VISIONIAS

www.visionias.in

MAINS 365

Classroom Study Material

राजव्यवस्था-I

October 2016 – June 2017

Note: July, August and September Material will be updated in September Last week.

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

विषय सूची

1. केंद्र-राज्य सम्बन्ध ____ *5*

1.1.सहयोग की प्रक्रिया ____ 5

1.1.1 राज्यपाल की भूमिका ____ 5

1.1.2. अंतरराज्यीय परिषद ____ 7

1.1.3. नीति आयोग ____ 9

1.1.4. एक भारत श्रेष्ठ भारत पहल ____ 10

1.2 अंतर-राज्यीय जल विवाद ____ 11

1.3. विशेष दर्जा प्राप्त राज्य ____ 13

1.3.1. नागालैंड की महिलाओं द्वारा शहरी स्थानीय निकायों में आरक्षण की मांग ____ 13

1.3.2. गोरखालैंड मामला ____ 15

1.3.3. छठी अनुसूची ____ 16

1.4. संघ शासित प्रदेश से सम्बंधित मामले ____ 18

1.4.1. पुडुचेरी लेफ्टिनेंट गवर्नर मामला ____ 18

2. संविधान से सम्बंधित मामलें ____ *22*

2.1. वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता ____ 22

2.1.1. मानहानि ____ 22

2.1.2. धारा 295A ____ 23

2.1.3.प्रेस और मीडिया की स्वतंत्रता ____ 24

2.2. चयन का अधिकार ____ 25

2.3. पशु व्यापार पर प्रतिबंध ____ 26

2.4. इंटरनेट तक पहुँच का अधिकारः सर्वोच्च न्यायालय ____ 29

2.5 राष्ट्रीय प्रतीकों का सम्मान ____ 29

2.5.1. राष्ट्रीय गीत का प्रचार ____ 30

2.6. भाषा संबंधी मामलें ____ 30

2.6.1. संविधान की आठवीं अनुसूची ____ 30

2.6.2. हिंदी भाषा का संवर्धन ____ 31

2.7. निवारक निरोध ____ 32

2.8. संसदीय प्रणाली बनाम राष्ट्रपति प्रणाली ____ 32

3.संसद/ राज्य विधायिका एवं कार्यपालिका के कार्य ____ *34*

3.1. संसदीय कार्यवाही से संबंधित मुद्दे ____ 34

3.1.1. दल बदल विरोधी क़ानून ____ 34

3.1.2. संसदीय समितियां ____ 35

3.1.3. संसद में सुधार: दक्षता बढ़ाना ____ 36

3.1.4. विधायिका के विशेषाधिकार ____ 38

VISION IAS

3.2. राज्य सभा से सम्बंधित मामलें ____ 39
3.2.1. राज्य सभा की प्रासंगिकता ____ 39
3.2.2. राज्यसभा में संयुक्त समूह ____ 40
3.3 कार्यपालिका से सम्बंधित मामलें ____ 40
3.3.1. अध्यादेश का मार्ग ____ 40
3.3.2. लाभ का पद ____ 41
3.3.3. स्पॉइल्स सिस्टम ____ 43
3.3.4. अत्यधिक सरकारी मुकदमेबाजी ____ 44
4. संवैधानिक, नियामकीय एवं अन्य निकाय ____ 46
4.1. CBI ____ 46
4.2. NHRC से सम्बंधित मुद्दे ____ 47
4.3. राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग (NCBC) ____ 49
4.4 ट्रिब्यूनलाइजेशन ____ 50
4.5 CCI और क्षेत्र विशिष्ट नियामक ____ 51
5. भारत में चुनाव ____ 53
5.1. RPA से सम्बंधित मुद्दें ____ 53
5.1.1. धर्म एवं चुनाव - RPA की धारा 123(3) ____ 53
5.1.2. मतदाता को प्रत्याशी की योग्यता जानने का अधिकार ____ 54
5.1.3. प्रत्याशियों द्वारा आय के स्रोतों का प्रकटन ____ 54
5.1.4. दोषसिद्ध विधि निर्माताओं (विधायिका सदस्यों) पर आजीवन प्रतिबन्ध ____ 54
5.2. चुनाव सुधार ____ 55
5.2.1. राजनीतिक दलों के वित्तपोषण में सुधार ____ 55
5.2.2. कॉरपोरेट फंडिंग में सुधार: ____ 57
5.2.3. पेड न्यूज़ और चुनाव सुधार ____ 59
5.2.4. चुनावी परिदृश्य और मुफ्त उपहार ____ 60
5.3. बहु चरणीय चुनाव ____ 61
5.4. एक साथ चुनाव ____ 62
5.5. वापस बुलाने का अधिकार ____ 63
5.6. वोटर वेरिफाइबल पेपर ऑडिट ट्रेल (VVPAT) ____ 65
5.7. NOTA ____ 65
5.8. ECI से सम्बंधित मुद्दें ____ 66
5.8.1. निर्वाचन आयोग को अवमानना के संबंध में शक्तियां ____ 66

VISION IAS

5.8.2. सरकारी नियन्त्रण से स्वतंत्रता 67
5.8.3. ECI द्वारा सुझाये गये अन्य सुधार 68
5.9 राष्ट्रीय दल की स्थिति की समीक्षा 68
5.10. जनमत संग्रह की प्रासंगिकता और उपयुक्तता 69
6. न्यायपालिका 71
6.1. राष्ट्रीय अपील न्यायालय 71
6.2.अखिल भारतीय न्यायिक सेवा 72
6.3. न्यायालय की अवमानना 73
6.4. न्यायाधीशों की नियुक्ति 74
6.5. न्यायिक आचार एवं जवाबदेहिता 75
6.6. न्यायिक पारदर्शिता 77
6.6.1. क्या न्यायपालिका को RTI के अधीन आना चाहिए? 78
6.7 न्यायिक बैकलॉग और देरी 79
6.8. अनुच्छेद-142 और न्यायिक संयम की आवश्यकता 80
6.9. वैकल्पिक विवाद समाधान प्रणाली 81
6.9.1 पंचाट और मध्यस्थता 81
6.9.2. राष्ट्रीय लोक अदालत 83
6.10. न्यायपालिका से सम्बंधित योजनाएँ 83
6.10.1. इंटीग्रेटेड केस मैनेजमेंट इनफार्मेशन सिस्टम (ICMIS) 83
6.10.2. टेली-लॉ इनिशिएटिव 84
6.10.3. 'मध्यम आय समूह योजना' (मिडिल इनकम ग्रुप स्कीम) 85
6.11. अलग-अलग अपराधों के लिए पृथक-पृथक ट्रायल 85

VISION IAS

1. केंद्र-राज्य सम्बन्ध

(CENTRE STATE RELATIONS)

1.1.सहयोग की प्रक्रिया

(Mechanisms of Cooperation)

1.1.1 राज्यपाल की भूमिका

(Role of Governor)

सहकारी संघवाद को बढ़ावा देने में राज्यपाल की महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि वह केंद्र और राज्य सरकार के बीच महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में कार्य करता है। केंद्र और राज्य के बीच सेतु के रूप में राज्यपाल की विभिन्न भूमिकाएं इस प्रकार हैं-

- अनुच्छेद 200 के अंतर्गत, राज्य विधायिका द्वारा पारित विधेयक राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित किये जा सकते हैं।
- अनुच्छेद 356 के अंतर्गत, राज्यपाल राज्य की संवैधानिक मशीनरी के कामकाज की सूचना देता है। वह सुनिश्चित करता है कि राज्य के कार्य केंद्रीय कानूनों और दिशानिर्देशों के अनुरूप हों।
- संविधान और कानूनों का परिरक्षण (preserve), संरक्षण (protect) एवं प्रतिरक्षण (defend) करना राज्यपाल का कर्त्तव्य है। इस प्रकार राजनीतिक स्थिरता को बढ़ावा देने और भारतीय लोकतंत्र के आदर्शों को बनाए रखना उसका कर्तव्य और दायित्व है।

अनुच्छेद 356 से संबंधित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय

एस आर बोम्मई बनाम भारत संघ

- अनुच्छेद 356 का प्रयोग अत्यंत अनिवार्य परिस्थितियों तथा बहुत कम मामलों में किया जाना चाहिए। राजनीतिक लाभ के लिए इसका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए ।
- सरकार की बहुमत का परीक्षण सदन में किया जाना चाहिए। यह राज्यपाल की स्वेच्छा पर आधारित नहीं होना चाहिए ।
- न्यायालय मंत्रिपरिषद द्वारा दी गई सलाह पर प्रश्न नहीं उठा सकता है किन्तु वह राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए दी गयी सलाह के आधार का परीक्षण कर सकता है और दुर्भावनापूर्ण आशय पाए जाने पर सुधारात्मक कदम उठा सकता है।
- अनुच्छेद 356 का प्रयोग प्रशासकीय तंत्र की विफलता के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए बल्कि संवैधानिक मशीनरी के विफल हो जाने की स्थिति में ही इसका प्रयोग किया जाना चाहिए।

बूटा सिंह वाद

- राज्यपाल का प्रतिवेदन यथारूप नहीं ग्रहण किया जा सकता है और राष्ट्रपति शासन लागू करने के आधार के रूप में उपयोग किए जाने से पहले मंत्रिपरिषद द्वारा सत्यापित किया जाना चाहिए।
- आरोप यह था कि 2005 में बिहार के राज्यपाल बूटा सिंह ने अपनी **व्यक्तिगत संतुष्टि** के आधार पर विधानसभा के विघटन की अनुशंसा की थी। उनके अनुसार **कुछ दल अनैतिक साधनों के माध्यम से बहुमत प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे।**
- सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि यदि अन्य दलों या विधायकों के समर्थन से किसी राजनीतिक दल ने सरकार बनाने का दावा किया है और राज्यपाल के समक्ष संबंधित दल ने बहुमत का प्रमाण प्रस्तुत किया है तो वह अपने **व्यक्तिगत** आकलन के कारण इस आधार पर दावे की उपेक्षा नहीं कर सकता है कि भ्रष्ट साधनों के माध्यम से बहुमत जुटाया गया है।

अनुच्छेद 163 के अंतर्गत वह मुख्यमंत्री और अपनी मंत्रिपरिषद की सहायता और परामर्श से अपने कार्य करता है, सिवाय उन परिस्थितियों के जहां उसका अपने विवेक के अनुसार कार्य करना अपेक्षित है। इस प्रकार वह राज्य सरकार के साथ समन्वय के माध्यम से अपने कार्यों को सम्पादित करता है।

वह राज्य में किसी भी विधायी या प्रशासनिक प्रकरण के संबंध में मुख्यमंत्री से सूचना मांग सकता है। इस प्रकार वह राज्य की वर्तमान स्थिति के संबंध में केंद्र सरकार को सूचित कर सकता है।

साथ ही साथ, राज्यपाल की भूमिका केंद्र और राज्यों के बीच संघर्ष का एक प्रमुख बिंदु है।उपरोक्त मुद्दों के संबंध में संघर्ष के प्रमुख बिंदु निम्नलिखित विवेकाधीन शक्तियां हैं:

राष्ट्रपति शासन

आज तक 120 से अधिक बार केंद्र सरकार द्वारा अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग किया गया है। ऐसी परिस्थिति में राज्य का शासन केंद्र सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण में आ जाता है। राष्ट्रपति, राज्य विधानसभा को भंग कर देता है और केंद्र द्वारा नियुक्त राज्यपाल को राज्य का कामकाज निष्पादित करने का आदेश देता है। समस्या इसलिए उत्पन्न होती है क्योंकि संवैधानिक मशीनरी का विफल हो जाना संविधान में परिभाषित नहीं है और इसका राजनीतिक दलों द्वारा अपने लाभ के लिए दुरुपयोग किया जाता है, जैसा कि 2016 में अरुणाचल प्रदेश और उत्तराखंड के प्रकरण में देखा गया था।

अनुच्छेद 356 के संबंध में प्रासंगिक समितियों / आयोगों की टिप्पणियां

सरकारिया आयोग (1987)

- अनुच्छेद 356 का अत्यंत चरम स्थितियों में बहुत संयम से और केवल अंतिम उपाय के रूप में ही प्रयोग किया जाना चाहिए।
- संबंधित तथ्यों और विवरणों के साथ राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति को सौंपे गए प्रतिवेदन के आधार पर ही अनुच्छेद 356 का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- जब तक संसद द्वारा घोषणा का अनुमोदन न कर दिया जाए विधानसभा का विघटन नहीं होना चाहिए।

संविधान की समीक्षा हेतु राष्ट्रीय आयोग (2002)

- संवैधानिक प्रावधानों का पालन न करने वाले राज्यों को 'राज्य का शासन संवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप नहीं चलाया जा रहा है' के रूप में चेतावनी दी जानी चाहिए। अनुच्छेद 356 के अंतर्गत कार्रवाई करने से पहले, राज्य से प्राप्त किसी भी स्पष्टीकरण को ध्यान में रखा जाना चाहिए।
- राज्यपाल के उस प्रतिवेदन के संबंध में जानकारी को मीडिया में पूर्ण और विस्तृत रूप में प्रसारित किया जाना चाहिए जिसके आधार पर अनुच्छेद 356 (1) के अंतर्गत उद्घोषणा की गयी है।
- संसद समय-समय पर उदघोषणा को बनाये रखने की आवश्यकता की समीक्षा कर सके, अतः अनुच्छेद 352 के अंतर्गत की गई आपात की उद्घोषणा से संबंधित रक्षोपायों को अनुच्छेद 356 में भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।

पुंछी आयोग (2008)

- पुंछी आयोग ने स्थानीय स्तर पर **केवल प्रभावित हिस्से में आपात स्थिति** लागू करने की अनुशंसा की अर्थात केवल एक जिले में या उसके कुछ भागों में। इस प्रकार का आपात भी तीन महीने से अधिक अवधि तक जारी नहीं रहना चाहिए।
- पुंछी आयोग ने इस अनुच्छेद का उपयोग करने के संबंध में एस.आर. बोम्मई वाद (1994) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए दिशानिर्देशों का समावेश करने के लिए अनुच्छेद 356 में उपयुक्त संशोधनों की भी अनुशंसा की।

त्रिशंकु विधानसभा की स्थिति में मुख्यमंत्री की नियुक्ति

- गोवा और मणिपुर में गैर-बहुमत वाले दल को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किये जाने को लेकर राज्यपाल के विवेकाधिकार पर एक बार फिर प्रश्न उठ खड़ा हुआ।
- अनुच्छेद 164 (1) राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री की नियुक्ति का प्रावधान करता है। सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि अनुच्छेद 164 (1) में मुख्यमंत्री के रूप में नियुक्त होने के लिए आवश्यक योग्यता का वर्णन नहीं है। 164 (2) में सामूहिक उत्तरदायित्व के प्रावधानों के साथ संयुक्त रूप से इसका निर्वचन किया जाना चाहिए। सदन में बहुमत द्वारा समर्थन ही एकमात्र शर्त है जिसे मुख्यमंत्री पद के उम्मीदवार द्वारा पूरा किया जाना चाहिए।
- मुख्यमंत्री की नियुक्ति के सन्दर्भ में सरकारिया आयोग ने निम्नलिखित अनुशंसाएं कीं:
  - विधानसभा में व्यापक समर्थन वाले दल या दलों के संयोजन को सरकार बनाने के लिए बुलाया जाना चाहिए।
  - यदि चुनाव पूर्व गठजोड़ या गठबंधन है तो उसे एक राजनीतिक दल माना जाना चाहिए। यदि इस प्रकार का गठबंधन बहुमत प्राप्त कर लेता है तो इस प्रकार के गठबंधन के नेता को राज्यपाल द्वारा सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जाएगा।
  - यदि किसी भी दल या चुनाव पूर्व गठबंधन के पास स्पष्ट बहुमत नहीं है तो राज्यपाल को नीचे दी गई प्राथमिकता के अनुसार मुख्यमंत्री का चयन करना चाहिए:

VISION IAS

a) सबसे बड़ी सदस्य संख्या द्वारा समर्थित दलों का समूह जिन्होंने चुनाव पूर्व गठबंधन किया था।

b) अन्य सदस्यों के समर्थन से सरकार बनाने का दावा करने वाला सबसे बड़ा एकल दल।

c) चुनाव बाद किया जाने वाला गठबंधन जिसके सभी सहयोगी सरकार में सम्मिलित होने पर सहमत हों।

d) चुनाव बाद किया जाने वाला ऐसा गठबंधन जिसमे कुछ दल सरकार में सम्मिलित हों और शेष बाहर से समर्थन करें।

केंद्र द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति और स्थानान्तरण

संविधान में राज्यपाल की योग्यता का उल्लेख नहीं किया गया है। अतः बहुधा पूर्व नौकरशाहों, सेवानिवृत्त CJI, सक्रिय राजनेताओं आदि को राज्यपाल नियुक्त किया गया है। इससे राज्यपाल केंद्र सरकार के प्रति प्रतिबद्ध हो जाते हैं।

इस प्रकार राज्यपाल की भूमिका के सम्बन्ध में पुंछी आयोग की अनुशंसाओं पर विचार किया जाना चाहिए:

- इस आयोग ने अनुच्छेद 157 में सम्मिलित किए जाने हेतु राज्यपाल की योग्यता के लिए कुछ निश्चित मापदंडों को प्रतिपादित किया है:
  - राष्ट्रपति के विचार में राज्यपाल प्रतिष्ठित व्यक्ति होना चाहिए;
  - राज्यपाल संबंधित राज्य से बाहर का व्यक्ति होना चाहिए;
  - राज्यपाल असम्बद्ध व्यक्ति होना चाहिए और राज्य की स्थानीय राजनीति से बहुत घनिष्ठ रूप से जुड़ा नहीं होना चाहिए। तदनुसार, यह आवश्यक है कि राज्यपाल ने अपनी नियुक्ति से कम से कम दो वर्ष पहले केंद्र या राज्य अथवा स्थानीय स्तर पर सक्रिय राजनीति में भाग न लिया हो।
- राज्यपाल का कार्यकाल निश्चित अर्थात 5 वर्षों की अवधि के लिए होना चाहिए।
- "राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत" पद को संविधान के अनुच्छेद 156 से हटाया जा सकता है।
- बी.पी. सिंघल बनाम भारत संघ वाद में, सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की कि राज्यपाल को हटाने की शक्ति का मनमाने, सनकपूर्ण या अनुचित तरीके से प्रयोग नहीं किया जा सकता है। इस शक्ति का प्रयोग विशेष परिस्थितियों में वैध और अनिवार्य कारणों के आधार पर ही किया जाना चाहिए।
- संसद द्वारा राष्ट्रपति के महाभियोग की तर्ज पर राज्य विधानमंडल द्वारा राज्यपाल के महाभियोग के लिए प्रावधान किया जा सकता है।
- राज्यपाल के रूप में दूसरे कार्यकाल या राज्यपाल अथवा भारत के राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के रूप में नियुक्ति को छोड़कर राज्यपालों को संघ या राज्य सरकारों के अंतर्गत किसी अन्य पद (लाभ के पद) पर नियुक्ति के लिए पात्र नहीं माना जाना चाहिए।
- साथ ही, अपना पद छोड़ने या त्यागने के बाद राज्यपाल द्वारा सक्रिय राजनीति में पुनः भागीदारी नहीं की जानी चाहिए।

चूँकि राज्यपाल पर संविधान के संरक्षण, परिरक्षण एवं प्रतिरक्षण का संवैधानिक दायित्व है। अतः उन्हें न केवल निष्पक्ष होना चाहिए, बल्कि निष्पक्ष दिखना भी चाहिए।

1.1.2. अंतरराज्यीय परिषद

(Interstate Council)

केंद्र और राज्यों के मध्य सहयोग सुनिश्चित करने में भूमिका

- यह केंद्र-राज्य और अंतरराज्यीय संबंधों को मजबूत करने और नीतियों पर चर्चा के लिए सर्वाधिक प्रभावशाली मंच है।
- यह नीति निर्माण एवं उसके त्वरित कार्यान्वयन हेतु परस्पर सहयोग, समन्वय और विकास के एक उपकरण के रूप में कार्य करता है।
- यह राज्यों के मुख्यमंत्रियों को अवसर प्रदान करता हैं कि वे राज्यों की चिंताओं और मुद्दों को परिषद के समक्ष विचार के लिये रखें। अतः यह केंद्र और राज्यों के बीच अविश्वास को दूर करने में सक्षम है।

VISION IAS

अंतरराज्यीय परिषद (ISC)

- भारतीय संविधान के **अनुच्छेद 263** के तहत राज्यों एवं केंद्र सरकार के मध्य समन्वय स्थापित करने के लिए अंतरराज्यीय परिषद का प्रावधान किया गया है।
- यद्यपि यह एक **स्थायी संवैधानिक संस्था** नहीं है, किंतु यदि राष्ट्रपति को ऐसा प्रतीत होता है कि इस परिषद की स्थापना लोकहित के लिए आवश्यक है, तब इसे किसी भी समय स्थापित किया जा सकता है।
- सर्वप्रथम इस परिषद को सरकारिया आयोग की अनुशंसा पर स्थापित किया गया था।
- इसे राष्ट्रपति के आदेशानुसार 28 मई,1990 को स्थापित किया गया था।
- इस परिषद का अध्यक्ष **प्रधानमंत्री** होता है। इस परिषद में सभी राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों के **मुख्यमंत्री** तथा प्रधानमंत्री द्वारा नामित केंद्र सरकार के **6 कैबिनेट मंत्री** सम्मिलित होते हैं।

ISC के कामकाज से सम्बंधित मुद्दे

- इसे केवल एक वार्ता मंच के रूप में देखा जाता है। इस छवि को बदलने की आवश्यकता है। परिषद को अपने कार्यकरण से यह दर्शाने की आवश्यकता हैं कि इस मंच पर उठाये गए मुद्दें अपने अभिनिर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में सक्षम है।
- इसकी सिफारिशें सरकार पर बाध्यकारी नहीं होती हैं।
- इसकी बैठक नियमित रूप से नहीं होती है। हाल ही में, 12 वर्ष के अंतराल के बाद अंतरराज्यीय परिषद की बैठक आयोजित की गयी थी।

ISC को और मजबूत बनाने की आवश्यकता

- FC और ISC को साथ मिलकर संविधान के भाग XI और XII के प्रावधानों को क्रियान्वित करना चाहिए ताकि समुचित **वित्तीय हस्तांतरण और राजनीतिक विकेंद्रीकरण** सुनिश्चित किया जा सके।
- इसे अंतरराज्यीय विवादों की जांच करने की शक्ति दी जानी चाहिए जिसका उल्लेख संविधान में भी किया गया है। किन्तु, 1990 में राष्ट्रपति के आदेश के द्वारा ISC के गठन के समय इसे यह शक्ति प्रदान नहीं की गयी थी (सरकारिया आयोग की सिफारिशों के आधार पर)।
- इसे केंद्र और राज्यों के बीच केवल प्रशासनिक ही नहीं अपितु राजनीतिक और विधायी आदान-प्रदान के एक सशक्त मंच के रूप में विकसित किया जाना चाहिए।

पुंछी आयोग की निम्न सिफारिशें भी विचारणीय है:

- राज्यों के साथ उचित परामर्श के पश्चात् निर्धारित एजेंडे पर विचार करने के लिये अंतर-राज्यीय परिषद की प्रतिवर्ष कम से कम तीन बैठकों का आयोजन किया जाना चाहिए।
- इस परिषद की संगठनात्मक संरचना में अखिल भारतीय सेवाओं के अतिरिक्त कानून, प्रबंधन और राजनीति विज्ञान के विशेषज्ञों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।
- परिषद के लिए एक स्थाई सचिवालय की स्थापना की जानी चाहिए जिसमें केन्द्रीय और राज्य लोक सेवा के अधिकारियों को प्रतिनियुक्ति के माध्यम से नियुक्त किया जा सकता हैं। इसके अतिरिक्त सचिवालय को प्रासंगिक क्षेत्रों के विषय विशेषज्ञों का सहयोग प्रदान करने के साथ ही कार्यात्मक स्वतंत्रता भी प्रदान की जानी चाहिए।
- ISC, नीतियों के विकास और मतभेदों के समाधान के लिए विचार-विमर्श का एक जीवंत मंच बन गया है। सरकार द्वारा राष्ट्रीय विकास के कार्यों को भी ISC को स्थानांतरित किया जा सकता है।

निष्कर्ष

- हालांकि अन्य कई संस्थाएं जैसे नीति आयोग जो केंद्र-राज्य के मुद्दों को संबोधित करती है ; की गवर्निंग काउंसिल की सांगठनिक संरचना ISC के समान ही प्रधानमंत्री सहित कैबिनेट मंत्री और मुख्यमंत्रियों से मिलकर निर्मित होती है। किन्तु, ISC की विशिष्टता इसका संविधान के प्रावधानों के अनुरूप स्थापित होना हैं, जबकि नीति आयोग के संबंध में संविधान में ऐसे किसी प्रावधान का उल्लेख नहीं है। इसे केवल एक कार्यकारी आदेश द्वारा स्थापित किया गया है।

VISION IAS

- अत: ISC का संवैधानिक आधार राज्यों को अधिक सशक्त भूमिका प्रदान करता है। अत: यह स्पष्ट है कि राज्यों को नीति निर्माण और क्रियान्वयन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होने से केंद्र-राज्य संबंधों के सहज संचालन के लिए सहयोगी और समन्वययुक्त वातावरण का निर्माण होगा।

1.1.3. नीति आयोग

(Niti Ayog)

1 जनवरी 2015 को केन्द्रीय कैबिनेट द्वारा एक संकल्प पारित करके नीति आयोग (नेशनल इंस्टिट्यूट फॉर ट्रांसफोर्मिंग इंडिया) की स्थापना की गयी। यह भारत सरकार का प्रमुख नीतिगत थिंक टैंक है। इसका उद्देश्य सहकारी संघवाद की भावना को दृढ़ता प्रदान करते हुए नीतियों तथा योजनाओं का निर्माण करना है।

योजना आयोग से असमानताएँ:

- यद्यपि सांगठनिक संरचना की दृष्टि से यह योजना आयोग के समान ही है परन्तु कार्यात्मक स्तर पर दोनों में भिन्नता व्याप्त है। नीति आयोग का कार्य केवल एक नीतिगत **थिंक टैंक** के समान हैं तथा इसे पूर्ववर्ती योजना आयोग को प्राप्त दो अन्य कार्यों जिनमें **पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण तथा राज्यों को धन का हस्तांतरण हैं,** से मुक्त रखा गया है।
- नीति आयोग तथा योजना आयोग के मध्य नीति निर्माण के दृष्टिकोण में व्याप्त प्रमुख असमानता यह है कि जहाँ योजना आयोग **टॉप-डाउन** दृष्टिकोण के अंतर्गत **'सबके लिए एक समाधान'** (one-size-fits-all plan) के अनुसार कार्य करता था, वहीं नीति आयोग राज्यों को अधिक महत्त्व प्रदान करते हुए योजनाओं के निर्माण में उनकी अधिकाधिक भागीदारी को सुनिश्चित करता है।

नीति आयोग:- सहकारी संघवाद के मंच के रूप में

संरचनात्मक सहयोग के माध्यम से सहकारी संघवाद को बढ़ावा देना, नीति आयोग को प्रदान किये गये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अधिदेश में से एक है। सहकारी संघवाद के अंतर्गत सम्मिलित हैं:

- राष्ट्रीय उद्देश्यों के प्रकाश में राष्ट्रीय विकास प्राथमिकताओं, क्षेत्रकों तथा रणनीतियों में साझे दृष्टिकोण के साथ राज्यों की **अग्रसक्रिय भागीदारी(Proactive partnership)** को सुनिश्चित करना।
- संरचनात्मक सहयोग तथा व्यवस्थाओं के माध्यम से राज्यों के मध्य सहकारी संघवाद की भावना को सुदृढ़ करना। यह इस तथ्य की पुष्टि करता है कि सशक्त राज्यों (states) द्वारा ही एक सशक्त राष्ट्र (State) का निर्माण संभव हैं।

सहकारी संघवाद को प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित कदम उठाये गए हैं:

- **मुख्यमंत्रियों के तीन उपसमूहों का गठन** किया गया है। इनका उद्देश्य केंद्र सरकार को केंद्र प्रायोजित योजनाओं को युक्तिसंगत एवं तार्किक बनाने, कौशल विकास तथा स्वच्छ भारत अभियान के सन्दर्भ में सलाह प्रदान करना है। तीनों उपसमूहों ने अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंप दी है। इनकी कुछ अनुसंशाओं का क्रियान्वयन भी किया जा चुका है जबकि कुछ अन्य पर विचार किया जा रहा है।
- **स्वास्थ्य, शिक्षा और जल प्रबंधन में राज्यों के प्रदर्शन का आकलन करने वाले सूचकांकों के माध्यम से सामाजिक क्षेत्रक में सुधार:** स्वास्थ्य, शिक्षा तथा जल जैसे महत्त्वपूर्ण सामाजिक क्षेत्रकों के वार्षिक सुधारात्मक परिणामों के आकलन के लिए नीति आयोग ने कुछ सूचकांकों का निर्माण किया है। इसके द्वारा जहाँ एक ओर राज्य बेहतर परिणामों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं वहीं दूसरी ओर **सर्वोत्तम प्रक्रियाओं और नवाचारों** के द्वारा परस्पर सहयोग भी करते हैं। यह प्रतिस्पर्धी तथा सहकारी संघवाद का उदाहरण है।
- राज्य तथा केन्द्रीय मंत्रालयों को एक ही मंच पर एक साथ लाकर दोनों पक्षों से जुड़े **मुद्दों के समाधान की सुविधा प्रदान करना।** उदाहरण के लिए, हाल ही में नीति आयोग ने तेलंगाना राज्य तथा विभिन्न केन्द्रीय मंत्रालयों के मध्य लंबित मुद्दों को सुलझाने के लिए ऐसी पहल की है।

इसी प्रकार राज्यों से सम्बंधित ऐसी बहुत सी समस्याएँ सुलझाई जा सकती हैं जो केंद्र सरकार की परियोजनाओं के समक्ष अवरोध उत्पन्न करती हैं। नीति आयोग को भविष्य में भी विभिन्न राज्यों तथा केंद्रीय मंत्रालयों के मध्य उठने वाले द्विपक्षीय मुद्दों को सुलझाने के लिए एक मंच के रूप में कार्य करते रहने के लिए तैयार रहना चाहिए।

VISION IAS

चुनौतियाँ

- नीति आयोग से भारत के लिए एक दीर्घकालीन दृष्टिकोण के विकास हेतु विचारों के स्रोत तथा राज्यों एवं केंद्र के मध्य कनवर्जेंस के एक माध्यम के रूप में कार्य करने की अपेक्षा है। साथ ही इसके द्वारा विभिन्न विभागों के मध्य समन्वय का कार्य भी किए जाने की अपेक्षा हैं।
- इन दो दिए गए कार्यों के क्रियान्वयन में नीति आयोग तथा अंतर-राज्य परिषद (ISC), जो एक **संवैधानिक निकाय** है एवं कैबिनेट सचिवालय, जो वर्तमान में विभिन्न विभागों के मध्य **समन्वय का कार्य देखता** है; के कार्यों में परस्पर अतिव्यापन (ओवरलैपिंग) की समस्या उत्पन्न हो सकती है।

आगे की राह

नीति आयोग भारत में रूपांतरण की प्रक्रिया को संपन्न करने का उत्तरदायित्व राज्यों को सौंपता है जिसके परिणामस्वरूप अब केंद्र तथा राज्यों के मध्य संबंध सहकारी संघवाद से प्रतिस्पर्धी सहकारी संघवाद में रूपांतरित हो चुके हैं। भारत के समक्ष SDGs: 2030 लक्ष्यों की प्राप्ति के मार्ग में विभिन्न चुनौतियाँ विद्यमान हैं। इस रूपांतरण के लिये निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये केंद्र सरकार ने स्मार्ट सिटी, स्किल इंडिया, सबके लिए आवास, सबके लिए विद्युत जैसी विभिन्न मिशन मोड आधारित योजनाओं को प्रारंभ किया है। इन सभी की सफलता राज्यों के परस्पर तथा केंद्र के साथ सक्रिय सहयोग तथा स्वस्थ प्रतिस्पर्धा पर निर्भर करती है। नीति आयोग से इस सहयोग की प्राप्ति में उत्प्रेरक की भूमिका निभाने की अपेक्षा है।

1.1.4. एक भारत श्रेष्ठ भारत पहल

(Ek Bharat Shreshtha Bharat Initiative)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में माननीय प्रधानमंत्री द्वारा "एक भारत श्रेष्ठ भारत" पहल का आरम्भ किया गया।

इस पहल के बारे में

- भारत की एकता और अखंडता को मजबूत बनाने के लिए यह एक अभिनव कार्यवाही है जिससे विभिन्न राज्यों एवं केंद्र शासित प्रदेशों की संस्कृति, परंपराओं तथा प्रथाओं के ज्ञान के माध्यम से राज्यों के मध्य एक बेहतर समझ एवं संबंध को बढ़ावा मिलेगा।
- इस कार्यक्रम के अंतर्गत सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों को सम्मिलित किया जाएगा।
- इस योजना के अनुसार, दो राज्य एक वर्ष के लिए एक अद्वितीय साझेदारी आरम्भ करेंगे जिसमें सांस्कृति और विद्यार्थियों के आदान-प्रदान को लक्षित किया जाएगा। इस पहल के शुभारंभ के अवसर पर दोनों राज्यों के मध्य 6 सहमति पत्रों (MOUs) पर हस्ताक्षर भी किए गए थे।
- इसमें एक विशेष राज्य का विद्यार्थी, एक-दूसरे की संस्कृति को जानने के लिए दूसरे राज्य की यात्रा करेगा।
- जिला स्तरीय समन्वय को बढ़ावा दिया जाएगा तथा यह राज्य स्तरीय समन्वय से स्वतंत्र होगा।
- वार्षिक कार्यक्रमों में विभिन्न राज्यों और जिलों को जोड़ने में यह गतिविधि अत्यधिक सहायक होगी। यह संस्कृति, पर्यटन, भाषा, शिक्षा व्यापार आदि के क्षेत्रों में आदान-प्रदान के माध्यम से लोगों को जोड़ेगी।
- नागरिक कई राज्यों / केंद्र शासित प्रदेशों में भ्रमण कर सांस्कृतिक विविधता का अनुभव करेंगे और यह महसूस करेंगे कि भारत एक है।

"एक भारत श्रेष्ठ भारत" का उद्देश्य:

- हमारे राष्ट्र की विविधता में एकता का प्रचार करना और इसे बनाए रखना तथा हमारे देश के लोगों के बीच पारंपरिक रूप से विद्यमान भावनात्मक बंधन के ताने-बाने को मजबूत करना।
- राज्यों के बीच एक वर्ष की अवधि वाली योजनाबद्ध भागीदारी द्वारा सभी भारतीय राज्यों और संघ शासित प्रदेशों के बीच एक प्रगाढ़ और समन्वित भागीदारी के माध्यम से राष्ट्रीय एकता की भावना को बढ़ावा देना।
- भारत की विविधता को समझने और उसकी सराहना करने में लोगों को सक्षम बनाने के लिए समृद्ध विरासत एवं संस्कृति, रीति-रिवाज एवं परंपराओं को प्रदर्शित करना तथा इस प्रकार पहचान की समान भावना को बढ़ावा देना।
- दीर्घकालिक भागीदारी की स्थापना करना तथा ऐसे माहौल का निर्माण करना जो राज्यों के बीच सर्वोत्तम कार्यप्रणाली और अनुभवों को साझा कर सीखने को बढ़ावा देता है।

VISION IAS

महत्व:

- एक भारत श्रेष्ठ भारत का विचार लोगों को बंधन और भाईचारे की स्वाभाविक डोर को आत्मसात करने में सक्षम बनाकर एक बेहतर राष्ट्र के निर्माण में मदद करेगा।
- यह योजना विभिन्न सांस्कृतिक विचारों के आदान प्रदान के माध्यम से संपूर्ण राष्ट्र हेतु जवाबदेही और स्वामित्व की भावना प्रेरित करने में मदद करेगी।

1.2 अंतर-राज्यीय जल विवाद

(Inter-State Water Disputes)

पृष्ठभूमि

भारत की अधिकांश नदियाँ अंतरराज्यीय स्तर पर विवादग्रस्त हैं। भारत की सबसे बड़ी 12 नदियों में से 9 अंतरराज्यीय नदियाँ हैं। भारत की मुख्यभूमि का 85% भाग बड़ी एवं मध्यम आकार वाली अंतरराज्यीय नदियों के अंतर्गत सम्मिलित है।

अंतर्राष्ट्रीय एवं अंतरराज्यीय सीमाओं से होकर बहने वाली सभी नदियों का विनियमन एवं विकास ही संभावित विवादों का मूल कारण है। तेजी से बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण एवं औद्योगीकरण आदि के कारण जल की मांग तीव्र गति से बढ़ी है जिससे यह समस्या और भी विकराल होती जा रही है।

नदी जल विवादों के प्रभाव

- लंबे समय तक चलने वाले एवं बार-बार उत्पन्न होने वाले विवादों के कारण लोगों के मध्य विभिन्न प्रकार की असुरक्षाएं बढ़ती हैं तथा उनकी आजीविका पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
- इन विवादों के संभावित प्रभाव भारत में राज्यों के मध्य संबंधों के दृष्टिकोण से नकारात्मक हैं। साथ ही, इसका विस्तृत प्रभाव राष्ट्र-राज्य की संघीय एकता पर भी पड़ता है। ये चिंताएँ अकारण नहीं हैं। 2016 में कावेरी विवाद को लेकर तमिलनाडु एवं कर्नाटक के बीच नृजातीय एवं नागरिकों के स्तर पर होने वाले संघर्ष एवं हिंसा की घटनाएँ इसका ज्वलंत उदाहरण हैं।
- इसका दूसरा उदाहरण, हाल ही में हुआ तेलंगाना अलगाववादी आंदोलन है। इस आंदोलन के मुख्य कारणों में से एक जल-संसाधन का क्षेत्रीय स्तर पर किया गया असमानतापूर्ण आवंटन था।
- जल संसाधनों के असमानतापूर्ण आवंटन के विषय का राजनीतिकरण भारत में नीति-निर्माताओं के समक्ष बड़ी-चुनौती के रूप में उभर रहा है। भारत में राज्यों एवं संघीय ढाँचे के लिए इस प्रकार के राजनीतिक आंदोलनों के गहरे निहितार्थ हैं।

संवैधानिक प्रावधान

संविधान के अनु. 262 (1) के अनुसार, "संसद, किसी अंतरराज्यीय नदी या नदी बेसिन में जल के उपयोग, वितरण या नियंत्रण के संबंध में किसी भी प्रकार की शिकायत या विवाद की स्थिति में विधि बनाकर अधिनिर्णय प्रदान कर सकती है।" इसी परिप्रेक्ष्य में संसद ने अंतरराज्यीय जल विवाद अधिनियम, 1956 को अधिनियमित किया है।

अंतरराज्यीय जल विवाद अधिनियम, 1956

प्रमुख विशेषताएँ

- ट्रिब्यूनल (न्यायाधिकरण) का गठन।
- ट्रिब्यूनल की शक्तियाँ सिविल कोर्ट के समान होंगी।
- ट्रिब्यूनल के निर्णयों के क्रियान्वयन हेतु योजनाओं के निर्माण की शक्ति।
- ट्रिब्यूनल के विघटन एवं नियमों को बनाने की शक्ति।
- जल विवादों का न्यायिक निर्णय (अधिनिर्णय)।
- डाटा बैंक एवं सूचना का रखरखाव।
- सर्वोच्च न्यायालय एवं अन्य न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को सीमित करना।

वर्तमान प्रावधानों की आलोचना

वर्तमान प्रावधानों की निम्न आधारों पर आलोचना की जाती हैं:

- 1956 के अधिनियम के तहत, प्रत्येक अंतराज्यीय जल विवाद के लिए पृथक ट्रिब्यूनल गठित किये जाने का प्रावधान है।
- ये ट्रिब्यूनल विवादों के समाधान में अत्यधिक समय लगाते हैं। कावेरी एवं रावी-व्यास जैसे टिब्यूनल क्रमशः विगत 26 एवं 30 वर्षो से अभी तक किसी अंतिम निर्णय पर नहीं पहुँच सके हैं। मौजूदा प्रावधानों में अधिनिर्णय हेतु निश्चित समयसीमा का प्रावधान नहीं है।
- ट्रिब्यूनल के निर्णय को लागू करने के लिए पर्याप्त तंत्र का अभाव है।

- **अंतिम समाधान का मुद्दा :** किसी भी पक्ष के अनुरूप निर्णय नहीं होने पर वह सर्वोच्च न्यायालय में चला जाता है। अब तक आठ में से मात्र तीन मामलों में ही ट्रिब्यूनलों के निर्णयों को राज्यों ने स्वीकार किया हैं।
- जल पर नियंत्रण को अधिकार के रूप में देखा जाता है तथा प्रत्येक स्थिति में उसकी रक्षा करना, कर्तव्य माना जाता है। अतः इस सम्बन्ध में किसी तरह का समझौता करना कमजोरी माना जाता है तथा ऐसा समझौता राजनीतिक दलों के अस्तित्व के लिये संकट उत्पन्न कर सकता है।

सामान्य रूप से आलोचना के उपरोक्त आधारों को देखते हुए तथा विशेष रूप से 1956 के अधिनियम को संदर्भ में रखते हुए, केंद्रीय जल संसाधन, नदी विकास एवं गंगा पुनरूद्धार मंत्री ने लोकसभा में अंतरराज्यीय नदी विवाद (संशोधन) अधिनियम, 2017 प्रस्तुत किया। यह अंतर-राज्यीय नदी जल विवादों के सन्दर्भ में दिए गए अधिनिर्णयों को लागू कराने का प्रावधान करता है एवं वर्तमान कानूनी एवं संस्थागत ढांचे को मजबूत बनाने पर बल देता है।

संशोधन विधेयक के महत्वपूर्ण प्रावधान

- केन्द्र सरकार द्वारा **विवाद समाधान समिति** (Dispute Redressal Committee; DRC) के गठन का प्रावधान है जिसका कार्य ट्रिब्यूनल में किसी भी मामले को भेजने से पूर्व सद्भावनापूर्ण ढंग से समाधान का प्रयास करना होगा। इसके लिए निर्धारित अवधि 1 वर्ष होगी जिसे 6 माह तक के लिए आगे बढ़ाया जा सकता है।
- **एकल ट्रिब्यूनलः** अधिनियम वर्तमान में स्थापित विभिन्न ट्रिब्यूनलों के स्थान पर एक सिंगल स्टैंडिग ट्रिब्यूनल (जिसकी अनेक बेंच हों) का प्रस्ताव करता है जिसमें एक अध्यक्ष एक उपाध्यक्ष एवं अधिकतम 6 सदस्य होंगे।
- **सदस्यों की आयु एवं कार्यकाल-** अध्यक्ष का कार्यकाल 5 वर्ष या 70 वर्ष की आयु (दोनों में जो भी पहले समाप्त हो) होगा। ट्रिब्यूनल के उपाध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों का कार्यकाल, जलविवाद की समाप्ति के साथ ही खत्म हो जाएगा।
- **समयसीमाः** ट्रिब्यूनल को किसी विवाद का समाधान साढे चार वर्षों में करना होगा।
- **अंतिम रूप से निर्णय:** ट्रिब्यूनल का निर्णय अंतिम एवं बाध्यकारी होगा।
- **डाटा संग्रहः** केंद्र सरकार के द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर डाटा संग्रह एवं डाटा बैंक के रखरखाव हेतु एक एजेंसी को नियुक्त एवं प्राधिकृत करने का प्रावधान है।
- **तकनीकी सहायताः** ट्रिब्यूनल को तकनीकी सहायता देने के लिए जांचकर्ताओं की नियुक्ति का प्रावधान है। ऐसे विशेषज्ञों की नियुक्ति सेंट्रल वाटर इंजीनियरिंग सर्विस से की जाएगी।

मुद्देः

- आवश्यकता उत्पन्न होने पर अधिनियम में इन स्थायी ट्रिब्यूनलों की बेंचों की स्थापना का प्रस्ताव किया गया है। इस प्रकार, यह स्पष्ट नहीं है कि किस प्रकार ये अस्थायी शाखाएँ, वर्तमान व्यवस्था से भिन्न है।
- सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में यह निर्णय दिया है कि वह ISWDA के अंतर्गत स्थापित जल ट्रिब्यूनलों के अधिनिर्णयों के विरुद्ध अपील सुन सकता है। इस प्रकार, इससे भी न्यायिक प्रक्रिया में देरी होगी।
- ट्रिब्यूनल के निर्णय को लागू कराने वाले संस्थागत तंत्र अभी भी अधर में हैं।

सुझाव एवं आगे की राह

- **अंतरराज्यीय परिषद (ISC)-** यह एक संवैधानिक निकाय है जिसका कार्य भारत के विभिन्न राज्यों के मध्य उत्पन्न होने वाले विवादों की जांच करना एवं परामर्श देना है। साथ ही, यह इन विषयों पर नीति एवं कार्यवाही में बेहतर सामंजस्य हेतु जांच एवं अनुशंसा करता है। यह विचार-विमर्श के द्वारा विवादों के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।
- कार्यान्वियन के लिये संघ सूची की प्रविष्टि 56 में वर्णित रिवर बोर्ड एक्ट,1956 एक शक्तिशाली कानून है जिसमें संशोधन करने की आवश्यकता है। इस एक्ट के अंतर्गत अंतरराज्यीय नदियों एवं इनके बेसिनों के विनियमन एवं विकास हेतु 'रिवर बेसिन आर्गेनाईजेशन' (RBOs) को स्थापित किया जा सकता है।
- **मध्यस्थता हेतु कदम बढ़ानाः** मध्यस्थता एक लचीली एवं अनौपचारिक प्रक्रिया है तथा इसमें मध्यस्थों का बहुविषयक दृष्टिकोण देखने को मिलता है। दक्षिण एशिया के संदर्भ में, सिंधु बेसिन की नदियों से जुड़े विवाद का सफलतापूर्वक समाधान करने में विश्व बैंक ने भारत एवं पाकिस्तान के मध्य अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

- **आपूर्ति पक्ष प्रबंधनः** बहुत से विशेषज्ञों का मानना है कि जल आपूर्ति को बढ़ाकर इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। इस प्रकार, दीर्घकालिक उपायों जैसे- जल संरक्षण एवं उपयोग को तर्कसंगत बनाना इत्यादि के द्वारा जल संसाधनों का अधिकतम उपयोग संभव है।
- **नदियों को राष्ट्रीय संपति घोषित करनाः** इसके माध्यम से राज्यों की उस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना संभव हो सकेगा जिसके अंतर्गत वे नदी जल को अपना अधिकार मानते हैं।
- **जल को समवर्ती सूची में सम्मिलित करनाः** यह सिफारिश **मिहिर शाह रिपोर्ट** पर आधारित है जिसमें जल प्रबंधन हेतु केंद्रीय जल प्राधिकरण की अनुशंसा की गयी है। यह जल संसाधन पर संसदीय स्थायी समिति के द्वारा भी समर्थित है।
- संस्थागत तंत्र के अलावा, राज्यों में जल विवाद के मानवीय पहलू के प्रति उत्तरदायित्व की भावना भी जागृत करना आवश्यक है।
- जल विवादों को राजनीति से दूर रखना आवश्यक है। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि राजनीतिक दल इन विवादों का अनावश्यक राजनीतिकरण करके अनुचित लाभ उठाने से बचें।

1.3. विशेष दर्जा प्राप्त राज्य

(States with Special Status)

भारतीय संविधान के अनुच्छेद-370 और अनुच्छेद-371 के तहत कुछ राज्यों को विशेष दर्जा प्रदान किया गया है। अनुच्छेद-370 के अंतर्गत जम्मू एवं कश्मीर राज्य को विशेष दर्जा प्रदान किया गया है जबकि अनुच्छेद-371 के अंतर्गत अन्य 12 राज्यों के लिए विशेष प्रावधान किए गये हैं। अनुच्छेद- 371, 371A और 371C के अंतर्गत क्रमशः नागालैंड और मणिपुर से संबंधित प्रावधान हैं।

LINGERING DISPUTES

Tribunal	States	Status
Ravi & Beas Water Tribunal	Punjab, Haryana and Rajasthan	Sub-judice
Krishna Water Disputes Tribunal-II	Karnataka, Maharashtra and Andhra Pradesh	Sub-judice
Vansadhara Water Disputes Tribunal awaited	Andhra Pradesh & Odisha	Decision awaited
Mahadayi Water Disputes Tribunal	Goa, Karnataka and Maharashtra	Decision awaited

Source: PIB, as on July 14, 2014

1.3.1. नागालैंड की महिलाओं द्वारा शहरी स्थानीय निकायों में आरक्षण की मांग

(Nagaland Women Demand ULB Reservation)

सुर्ख़ियों में क्यों ?

- नागालैंड की महिलाओं द्वारा शहरी स्थानीय निकायों (ULBs) में संवैधानिक रूप से 33 % आरक्षण की माँग की जा रही है।

पृष्ठभूमि

- ULBs में महिलाओं को आरक्षण देने हेतु संसद ने 1993 में 74वाँ संविधान संशोधन पारित किया। नागालैंड ने इस प्रावधान हेतु 2006 में नागालैंड म्यूनिसिपल (प्रथम संशोधन)अधिनियम पारित किया।
- 74 वें संविधान संशोधन तथा अनुच्छेद 371A के सिद्धांतों के मध्य विवाद के चलते नागालैंड में 2011 से ULB के कोई चुनाव संपन्न नहीं हुए हैं।
- अप्रैल 2016 में उच्चतम न्यायालय ने राज्य सरकार को स्थानीय निकायों के चुनाव करवाने का आदेश दिया।

74वें संविधान संशोधन में महिला आरक्षण से सम्बंधित प्रावधान

- अनुच्छेद 243T (3) प्रत्येक नगर पालिका में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की कुल संख्या के कम से कम एक तिहाई स्थान स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे और ऐसे स्थान किसी नगरपालिका के भिन्न-भिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को चक्रानुक्रम में आवंटित किए जा सकेंगे।
- अनुच्छेद 243T (4)- नगर पालिका अध्यक्ष के पद ऐसी रीति से महिलाओं के लिए आरक्षित रहेंगे जो राज्य का विधानमंडल विधि द्वारा उपबंधित करे।

अनुच्छेद 371A(1) क्या है?

निम्नलिखित के संबंध में संसद का कोई अधिनियम नागालैंड राज्य पर तब तक लागू नहीं होगा जब तक नागालैंड के विधानसभा संकल्प द्वारा ऐसा विनिश्चय नहीं करती है, अर्थात-

- नागाओं की धार्मिक या सामाजिक प्रथाएं
- नागा रूढ़िजन्य विधि और प्रक्रिया
- सिविल और दांडिक न्याय प्रशासन जहां विनिश्चय नागा रूढ़िजन्य विधि के अनुसार होते हैं
- भूमि और उसके संपत्ति स्रोतों का स्वामित्व और अंतरण

निहित मुद्दे

- यहाँ संविधान के अनुच्छेद 243T (महिलाओं के लिए सीटों का आरक्षण) तथा अनुच्छेद 371A के मध्य विरोधाभास है।
- नागालैंड के शहरी क्षेत्र बुनियादी सेवाओं की प्राप्ति हेतु प्रशासन की कमी का सामना कर रहे हैं क्योंकि सरकार ने 2011 से ही शहरी स्थानीय चुनावों के आयोजन को रोक रखा है।
- नागालैंड के प्रथागत कानूनों के अनुसार प्रशासन के संस्थानों के संचालन का अधिकार सिर्फ पुरुषों का है। ऐसे में महिलाओं द्वारा राजनीतिक प्रतिनिधित्व की मांग वहां संघर्ष को जन्म दे रही है।

महिला आरक्षण के पक्ष में दिए गए तर्क

- महिला आरक्षण पर संयुक्त कार्रवाई समिति का कहना है कि ULBs में महिलाओं के लिए आरक्षण को नकारना संविधान का उल्लंघन है।
- नागालैंड गांव और क्षेत्र परिषद अधिनियम (Nagaland Village and Area Council Act), 1978 के अनुसार ग्राम विकास बोर्डों में महिलाओं के 25% आरक्षण को लेकर जनजातियों ने कोई आपत्ति नहीं जताई। ऐसे में, ULBs में महिलाओं के चुनाव का विरोध अतार्किक है।
- शासी संस्थाओं में पुरुष प्रभुत्व लिंग विशिष्ट नीतियों में एक निर्वात उत्पन्न कर सकता है।
- नागालैंड में 76.11% की उच्च महिला साक्षरता दर विद्यमान है। किन्तु, आज तक केवल एक नागा महिला संसद हेतु निर्वाचित हो सकी है।
- यह राजनीतिक प्रतिनिधित्व द्वारा महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक सशक्तिकरण में बाधा उत्पन्न करता है।

महिला आरक्षण के विपक्ष में तर्क

- 16 जनजातीय समूहों के एक निकाय, नागा होहो के अनुसार ULB में महिलाओं को प्रतिनिधित्व दिया जाना उनके प्रथागत कानूनों के विरुद्ध है।
- उनका तर्क है कि वे इन निकायों में महिलाओं के प्रतिनिधित्व के खिलाफ नहीं हैं अपितु वे महिलाओ के चुनाव लड़ने का विरोध करते हैं। वे महिलाओं के चुनाव में खड़े होने के बजाए उनके मनोनयन को प्राथमिकता देते हैं।

सरकार द्वारा उठाये गए कदम

- नागालैंड की सरकार महिलाओं के लिए 33% आरक्षण के साथ ULB चुनावों के लिए सहमत हो गयी है।
- केंद्र सरकार 'लैंगिक रूप से समान शहरों '(engendered cities)' के विकास के लिए सभी ULBs में महिलाओं के लिए 50 % आरक्षण हेतु कार्यरत है।

आगे की राह :

- महिलाओं के लिए 50% आरक्षण के प्रस्ताव को जल्द ही अंतिम रूप देकर इसका बेहतर क्रियान्वयन किया जाना चाहिए।
- प्रथागत कानूनों में सुधार कर इन्हें लिंग तटस्थ बनाया जाना चाहिए।
- राजनीतिक दलों या विभिन्न स्थानीय परिषदों को खुद चुनाव में महिला उम्मीदवारों को मैदान में उतारने के लिए 'स्वैच्छिक कोटा' की स्थापना करनी चाहिए।

VISION IAS

1.3.2. गोरखालैंड मामला

(Gorkhaland Issue)

सुर्ख़ियों में क्यों?

एक पृथक गोरखालैंड के निर्माण की मांग पर दार्जिलिंग में पूर्ण बंदी और हिंसक घटनाएं देखी गईं।

आंदोलन क्यों?

- तात्कालिक कारण: राज्य सरकार द्वारा 9वीं कक्षा तक बांग्ला भाषा को अनिवार्य बना दिया गया है। परन्तु गोरखा, जिनकी मूल भाषा नेपाली है, इसे अपनी पहचान के लिए खतरा मान रहे हैं।
- दीर्घकालिक कारण: गोरखालैंड क्षेत्रीय प्रशासन (Gorkhaland Territorial Administration:GTA) के कामकाज में विभिन्न समस्याएं हैं। उपर्युक्त समस्या हेतु नेताओं ने राज्य सरकार द्वारा हस्तक्षेप किये जाने और GTA के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन उपलब्ध न कराने का आरोप लगाया है।

गोरखा कौन हैं?

भारतीय गोरखा स्वदेशी लोग हैं जो हिमालयी क्षेत्र और भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में निवास करते हैं। गोरखाओं का स्थायी निवास जम्मू-कश्मीर, हिमाचल, उत्तराखंड, सिक्किम, दार्जिलिंग, असम और उत्तर-पूर्व के अन्य राज्य हैं।

गोरखालैंड की मांग का इतिहास

गोरखालैंड में दार्जिलिंग, कालीम्पोंग, कुर्सीओंग और अन्य पहाड़ी जिलों के नेपाली भाषी लोग शामिल हैं। गोरखाओं का बंगाली समुदाय के साथ कोई संबंध नहीं है और वे नृजातीयता, संस्कृति और भाषा में भी इनसे अलग हैं।

- 1780 में, गोरखाओं ने सिक्किम और अन्य क्षेत्रों जिसमें तीस्ता से सतलज तक का संपूर्ण क्षेत्र जैसे दार्जिलिंग, सिलीगुड़ी, शिमला, नैनीताल, गढ़वाल पहाड़ी और कुमाऊं आदि पर कब्जा कर लिया था। 35 वर्षों के शासन के बाद, 1816 में एंग्लो-नेपाल युद्ध में हार के बाद गोरखाओं ने सुगौली की संधि के अनुसार इस क्षेत्र को अंग्रेजों को सौंप दिया।
- 1907 में, पहली बार मॉर्ले-मिंटो सुधार मंडल के समक्ष गोरखालैंड की मांग प्रस्तुत की गई थी। बाद में, कई अवसरों पर ब्रिटिश सरकार और फिर स्वतंत्र भारत सरकार से भी इसकी मांग की गई। इसके लिए 1980 और फिर 2007 के दशक में बड़े पैमाने पर दो आंदोलन हुए हैं।

गोरखालैंड की मांग क्यों है?

- भाषा और संस्कृति में अंतर।
- भारतीय गोरखा पहचान की आकाँक्षा: 1988 में 'दार्जिलिंग गोरखा हिल परिषद' और 2012 में GTA की स्थापना के बावजूद ये संस्थान गोरखा पहचान की आकाँक्षा को पूरा करने में विफल रहे।
- सापेक्षिक आर्थिक पिछड़ापन।
- बंगालियों द्वारा तथाकथित तौर पर दुर्व्यवहार और कोलकाता में प्रतिनिधित्व का अभाव।

गोरखालैंड की मांग का प्रत्युत्तर

- **दार्जिलिंग गोरखा हिल काउंसिल (DGHC):** 1986 में शुरू हुए इस आंदोलन के बाद, भारत सरकार, पश्चिम बंगाल सरकार और गोरखा नेशनल लिबरेशन फ्रंट ने जुलाई 1988 में एक त्रिपक्षीय समझौता किया। दार्जिलिंग जिले के पहाड़ी इलाकों में रहने वाले लोगों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक उन्नति" के लिए राज्य अधिनियम के तहत DGHC की स्थापना की गई। यह परिषद दार्जिलिंग जिले के तीन पहाड़ी सब-डिवीज़न और सिलीगुड़ी सब-डिवीज़न के भीतर कुछ मौज़ों (Mouzas) को शामिल करता है।

समस्याएँ:

- परिषद को सीमित कार्यकारी शक्तियां दी गई हैं, लेकिन विधायी शक्तियों की अनुपस्थिति के कारण इस क्षेत्र के लोगों की आकांक्षाओं को पूरा नहीं किया जा सकता है।
- परिषद में दुआर क्षेत्र (Dooars region) को शामिल नहीं करना असंतोष का एक प्रमुख कारण है।
- **गोरखालैंड क्षेत्रीय प्रशासन (GTA):** 2012 में दार्जिलिंग गोरखा हिल काउंसिल को प्रतिस्थापित करके भारत सरकार, पश्चिम बंगाल सरकार व गोरखा जनमुक्ति मोर्चा (GJM) द्वारा एक त्रिपक्षीय समझौते पर हस्ताक्षर कर GTA का गठन किया गया। यह एक अर्ध-स्वायत्त प्रशासनिक निकाय है। इसमें प्रशासनिक, कार्यकारी और वित्तीय शक्तियां हैं लेकिन विधायी शक्तियां नहीं हैं।

वर्तमान में GTA के अधिकार क्षेत्र में तीन पहाड़ी सब डिवीज़न- दार्जिलिंग, कुर्सीओंग और मिरीक तथा दार्जिलिंग जिले के सिलीगुड़ी सब डिवीज़न के कुछ इलाके एवं सम्पूर्ण कालीम्पोंग जिला आता है।

समस्याएँ:

- विधायी शक्तियों के अभाव का अर्थ है कि इस क्षेत्र के लोगों के पास स्वयं को शासित करने वाले कानूनों को बनाने का अधिकार नहीं है।
- दुआर को फिर से छोड़ दिया गया है। यहाँ "गोरखा बहुमत" क्षेत्रों की पहचान के लिए एक वेरिफिकेशन टीम का गठन किया गया है।

आगे की राह

एक अलग गोरखालैंड राज्य के आंदोलन का शीघ्र समाधान किया जाना चाहिए। राज्य के बहुसंख्यक बांग्लाभाषी विभाजन के विरुद्ध हैं। अतः ऐसा समाधान निकाला जाना चाहिए जो बांग्लाभाषियों की भावनाओं को ठेस पहुँचाये बिना नेपालीभाषी गोरखाओं की आकांक्षाओं की पूर्ति करता हो। इसके लिए निम्नांकित कदम उठाये जा सकते हैं:

- एक बेहतर शक्ति साझाकरण समझौता: गोरखालैंड आर्थिक रूप से व्यवहार्य नहीं है। पर्यटन के अतिरिक्त इसके पास बहुत से संसाधन नहीं हैं। चाय उद्योग को भी संकट का सामना करना पड़ रहा है। इसलिए GTA के कामकाज में सुधार किया जाना चाहिए और इसकी जवाबदेही तय की जानी चाहिए।
- केंद्र और राज्य सरकार को गोरखाओं की जरूरतों और आकांक्षाओं के प्रति अधिक संवेदनशील होना चाहिए। उदाहरण के लिए बांग्ला भाषा को प्रत्यक्ष रूप से थोपे जाने के बजाय इसे वैकल्पिक रखना चाहिए।
- क्षेत्र का आर्थिक विकास: अस्पतालों, स्कूलों, सार्वजनिक सेवाओं की स्थापना की जानी चाहिए। मौजूदा व्यवस्थाओं में सुधार करने की भी आवश्यकता है।
- अविभाजित पश्चिम बंगाल के भीतर एक स्वायत्त गोरखालैंड राज्य का निर्माण किया जा सकता है। अनुच्छेद 244A असम के कुछ आदिवासी क्षेत्रों के लिए एक स्वायत्त राज्य प्रदान करता है जिसकी अपनी विधायिका और मंत्रिपरिषद हैं। संविधान संशोधन से, इस अनुच्छेद की प्रयोज्यता को पश्चिम बंगाल तक बढ़ाया जा सकता है। वैकल्पिक रूप से, संवैधानिक संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 244 A के समान एक अनुच्छेद को नए अध्याय के रूप में संविधान के भाग VI में जोड़ा जा सकता है। यह वर्तमान पश्चिम बंगाल का विभाजन किये बगैर विधानमंडल और मंत्रिपरिषद की स्थापना के साथ गोरखालैंड के एक स्वायत्त राज्य के सपने को साकार करेगा।

1.3.3. छठी अनुसूची

(6th Schedule)

सुर्ख़ियों में क्यों?

असम सरकार जनजातीय प्रभुत्व वाले कई क्षेत्रों को संविधान की छठवीं अनुसूची में शामिल करने पर विचार कर रही है। यह निर्णय एक उप-समिति द्वारा राभा क्षेत्रों (राभा भारत के पश्चिम बंगाल तथा असम में रहने वाली एक जनजाति है) को छठवीं अनुसूची में शामिल करने को मंजूरी दिए जाने के उपरांत लिया गया है।

छठवीं और पाँचवीं अनुसूची के मध्य तुलना

हालांकि संविधान की पाँचवीं एवं छठवीं दोनों ही अनुसूचियाँ आदिवासी समुदायों को सशक्त बनाने के लिए निर्मित की गयी हैं, किन्तु इस सन्दर्भ में छठवीं अनुसूची को पाँचवीं अनुसूची से बेहतर माना जाता है, क्योंकि:

VISION IAS

- यह अधिक स्वायत्तता प्रदान करती है।
- पाँचवीं अनुसूची में उल्लिखित परिषद, राज्य विधान मंडल द्वारा निर्मित की जाती है जबकि छठवीं अनुसूची में यह स्वयं संविधान द्वारा स्थापित की गयी है।
- पाँचवीं अनुसूची की परिषद के विपरीत इनके पास खुद के लिए बजट तैयार करने की वित्तीय शक्ति भी है।
- इसे विस्तृत शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं तथा कई विषयों पर **कानून निर्माण करने की शक्ति** भी प्रदान की गयी है। इसके विपरीत पाँचवीं अनुसूची में आदिवासी सलाहकार परिषद के पास केवल राज्य सरकार को परामर्श देने की शक्ति है और वह भी मात्र उन विषयों पर जिन पर राज्यपाल सलाह माँगे। हालाँकि भूमि हस्तांतरण से संबंधित मामलों में इसे स्वयं निर्णय लेने की शक्ति प्राप्त है।
- छठवीं अनुसूची की परिषदों को विकास, स्वास्थ्य, शिक्षा व सड़क योजनाओं के वित्तपोषण के लिए भारत की **समेकित निधि** से भी धन प्राप्त होता है।

संविधान की छठवीं अनुसूची में असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के चार पूर्वोत्तर राज्यों में जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में विशेष प्रावधान सम्मिलित हैं ताकि उनकी सांस्कृतिक पहचान और रीति-रिवाज़ को अक्षुण्ण बनाए रखा जा सकें।

छठवीं अनुसूची में सम्मिलित किए जाने के लाभ

छठवीं अनुसूची में शामिल किये जाने से इन क्षेत्रों के लोगों को निम्नलिखित प्रावधानों के माध्यम से स्वशासन के मामले में अधिक स्वायत्तता प्राप्त हो जाएगी:

- राज्य की कार्यपालिका शक्ति के अंतर्गत स्वायत्त जिलों का निर्माण किया जाना। इनमें उस क्षेत्र में निवास करने वाली विभिन्न जनजातियों के निवास के आधार पर कई स्वायत्त क्षेत्र शामिल होते हैं।
- प्रत्येक स्वायत्त जिले में एक जिला परिषद होती है तथा प्रत्येक स्वायत्त क्षेत्र में एक अलग क्षेत्रीय परिषद होती है। ये दोनों ही अपने क्षेत्राधिकार के तहत आने वाले क्षेत्रों में प्रशासन संबंधी उत्तरदायित्व संभालते हैं।
- भूमि, वन, नहर के जल, स्थानांतरण कृषि ,ग्राम प्रशासन, संपत्ति के उत्तराधिकार, विवाह और तलाक, सामाजिक रीति-रिवाज जैसे कुछ विशिष्ट मामलों पर कानून बनाने के लिए विधायन शक्ति।
- **न्यायिक शक्ति -** परिषदें जनजातियों से संबंधित मुकदमों एवं मामलों के निपटारे के लिए ग्राम परिषदों या न्यायालयों का गठन कर सकती हैं। ऐसे मामलों के संबंध में सम्बंधित उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार राज्यपाल द्वारा अभिनिर्धारित किया जाता है।

कुछ अन्य कदम जिन्हें छठवीं अनुसूची को अधिक सशक्त के लिये उठाये जाने की आवश्यकता है:

- सभी क्षेत्रों में निर्वाचित ग्राम परिषदों का निर्माण।
- राज्य चुनाव आयोग द्वारा नियमित रूप से चुनाव कराया जाना सुनिश्चित करना।
- ग्राम सभा के प्रति ग्राम परिषदों की जवाबदेही सुनिश्चित करना।
- ग्राम सभा को विधिक दर्जा प्रदान करना और इसकी शक्तियाँ और कार्य तय करना।
- परिषद में महिलाओं को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान करना।
- विकास कार्यक्रमों की योजना बनाने, कार्यान्वयन और निगरानी में पारदर्शिता लाना।
- यह सुनिश्चित करना कि किसी भी नृजातीय अल्पसंख्यक समूह को परिषद में प्रतिनिधित्व से वंचित तो नहीं रखा गया है।

विनियामक शक्ति - जिला परिषद जिले में प्राथमिक विद्यालयों, सड़कों, डिस्पेंसरियों, बाजारों, घाटों, मत्स्य पालन केन्द्रों आदि की स्थापना, निर्माण तथा प्रबंधन कर सकती है। यह गैर-आदिवासियों द्वारा धन उधार देने और व्यापार के नियंत्रण के लिए नियम भी बना सकती है। हालाँकि ऐसे नियमों को राज्यपाल द्वारा स्वीकृति प्रदान किया जाना आवश्यक है।

कर राजस्व संग्रहण - जिला और क्षेत्रीय परिषदों को भू-राजस्व का आकलन करने और एकत्र करने के साथ ही कुछ निर्दिष्ट कर लगाने का भी अधिकार है।

स्वायत्त क्षेत्रों के संबंध में संसद या राज्य विधानमंडल की विधायन शक्ति पर सीमाए - संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित अधिनियम स्वायत्त जिलों और स्वायत्त क्षेत्रों पर लागू नहीं होते हैं अथवा निर्दिष्ट संशोधनों और अपवादों के साथ लागू होते हैं।

हालांकि छठवीं अनुसूची में शामिल करने का अर्थ सभी समस्याओं से मुक्ति नहीं है। इसमें शामिल क्षेत्र भी कुछ समस्याओं से ग्रस्त है, जैसे :

शक्तियों और प्रशासन का विकेंद्रीकरण नहीं - छठवीं अनुसूची के कई क्षेत्रों में विकेंद्रीकरण संबंधी प्रावधान लागू नहीं हो पाए हैं। उदाहरण के लिए बोडो प्रादेशिक क्षेत्र के जिलों में, केवल एक ही जिला परिषद है जहाँ कुछ लोगों को ही चुना जाता है तथा उनकी भी शक्तियों पर कोई स्पष्ट निर्बन्धन नहीं है। अतः ऐसी इकाइयों का निर्माण किया जाना चाहिए जिनमे सभी स्तरों से संबंधित लोगों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके।

विकास का अभाव - यद्यपि छठवीं अनुसूची लोगों को अधिक लाभ देने के लिए और तेजी से विकास करने के लिए अधिनियमित की गयी थी किन्तु स्थानीय (जनता के) स्तर पर पंचायत या परिषद का गठन नहीं हो पाया हैं। इस कारण से उनके पास विभिन्न योजनाओं जैसे मनरेगा आदि के कार्यान्वयन के लिए गैर-अनुसूचित क्षेत्रों (वे क्षेत्र जो छठवीं अनुसूची में नहीं हैं) के समान शक्ति और धन उपलब्ध नहीं हो पा रहा है।

भ्रष्टाचार और अवैध गतिविधियाँ - स्वायत्त परिषदों के कुछ सदस्य उग्रवादी गुटों को आर्थिक मदद पहुँचाते हैं। उदाहरण के लिए - उत्तर कछार स्वायत्त परिषद। द्रष्टव्य है कि ऐसे समूहों की NIA और CBI द्वारा निगरानी की जा रही है।

परिषदों पर राज्य की विधायन शक्ति - परिषदों द्वारा बनाए गए कानूनों के लिए राज्यपाल की सहमति आवश्यक है। इस प्रक्रिया में कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गयी है जिसके कारण ऐसे विधायनों में कई वर्षों का विलम्ब हो जाता है। इसके अतिरिक्त छठवीं अनुसूची के पैरा 12 (A) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जिला परिषदों और राज्य विधानमंडल के बीच किसी मुद्दे पर टकराव की स्थिति में राज्य विधानमंडल को प्राथमिकता दी जाएगी।

समन्वय के बिना कार्य का अतिव्यापन - व्यापक स्तर पर एक्टिविटी मैपिंग के अभाव के कारण परिषद और राज्य के कार्यों और क्षेत्राधिकारों में अतिव्यापन हो जाता है। उदाहरण के लिए - जल संसाधनों को विषाक्त होने से बचाने और प्रदूषित जल के शोधन व पुनः प्राप्ति के लिए परिषद तथा राज्य के जल संसाधन विभाग के बीच कोई समन्वयकारी व्यवस्था विद्यमान नहीं है।

राज्य वित्त आयोग से सम्बद्धता का अभाव - इन्हें इनके समकक्ष PRIs की तुलना में कम अनुदान प्रदान किया जाता है क्योंकि इन्हें राज्य वित्त आयोगों के तहत कवर नहीं किया गया है। इस प्रकार उन क्षेत्रों के PRIs के वित्तपोषण में अधिक उदारता दिखाई जाती है जो छठवीं अनुसूची से बाहर हैं। अतः इन परिषदों का वित्तपोषण अनुच्छेद 275 (वर्तमान में आय का प्रमुख स्रोत) के अंतर्गत अनुदान के रूप में सहायता के स्थान पर संविधान के अनुच्छेद 280 के तहत प्रत्यक्ष वित्तपोषण द्वारा किया जाना चाहिए।

राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों में विरोधाभास - इन क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में राज्यपालों की विवेकाधीन शक्तियों को लेकर अस्पष्टता व्याप्त है। ऐसे में इन विषयों से सम्बंधित मामलों में मंत्रिपरिषद के साथ राज्यपाल के परामर्श की आवश्यकता को लेकर भी मतभेद है।

1.4. संघ शासित प्रदेश से सम्बंधित मामले

(Issues Related To UT)

1.4.1. पुडुचेरी लेफ्टिनेंट गवर्नर मामला

(Puducherry LG Issue)

सुर्खियों में क्यों?

वर्तमान समय में पुडुचेरी के लेफ्टिनेंट गवर्नर और मुख्यमंत्री के बीच अधिकृत शक्तियों को लेकर संघर्ष की स्थिति बनी हुई है।

- मुख्यमंत्री द्वारा इस बात पर बल दिया गया है कि लेफ्टिनेंट गवर्नर को मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार काम करना चाहिए और उसे किसी भी निर्वाचन क्षेत्र में जाने की पूर्व सूचना प्रदान करनी चाहिए।
- वहीं लेफ्टिनेंट गवर्नर ने कहा कि वह "वास्तविक प्रशासक" है। साथ ही प्रशासनिक मामलों पर उन्हें विशेष शक्तियां प्राप्त हैं। इसलिए सभी फाइलों को उनकी मंजूरी के लिए भेजा जाना चाहिए।

- पुडुचेरी भारत के सबसे छोटे और प्रशासनिक रूप से चुनौतीपूर्ण संघ शासित प्रदेशों में से एक है। यह दक्षिण भारत के तीन राज्यों में प्रशासनिक इकाई के रूप में विस्तृत है:
  - तमिलनाडु में पुडुचेरी और कराईकल
  - केरल में माहे
  - आंध्रप्रदेश में यनम जिला

गवर्मेंट ऑफ़ यूनियन टेरिटरी एक्ट, 1963 में अस्पष्टता

- यह अधिनियम "संघ राज्य क्षेत्र पांडिचेरी" के शासन हेतु विधान सभा तथा एक मंत्रिपरिषद का प्रावधान करता है। यह अधिनियम विधान सभा को "विधायी सीमा" के अंतर्गत राज्य सूची या समवर्ती सूची में वर्णित किसी भी मामले के संबंध में संपूर्ण पुडुचेरी केंद्रशासित प्रदेश या इसके किसी विशेष हिस्से के लिए कानून बनाने की शक्ति प्रदान करता है।
- हालांकि, इस अधिनियम में कहा गया है कि राज्य का प्रशासन भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त लेफ्टिनेंट गवर्नर के माध्यम से किया जाएगा। अधिनियम की धारा 44 के अनुसार मुख्यमंत्री की अध्यक्षता वाली मंत्रिपरिषद, जिन विषयों पर विधान सभा को कानून बनाने की शक्ति प्राप्त है उन पर प्रशासक को उसके कार्यों के संचालन में सहायता और सलाह देगी। यदि किसी मुद्दे पर असहमति हो तो यही धारा प्रशासक को अपने विवेकानुसार कानून बनाने की शक्ति भी प्रदान करती है।

मुख्यमंत्री के पक्ष में तर्क:

निर्वाचित सरकार के अधिकारों को कम करना

- दिल्ली और पुडुचेरी संघ शासित प्रदेशों में विधान सभा और मंत्रिपरिषद का प्रावधान किया गया है। इसलिए, इन क्षेत्रों के प्रशासक से मुख्यमंत्री और उनकी मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह के अनुसार कार्य करना अपेक्षित है।
- **जनता के प्रति जवाबदेही** - विधान सभा में जनता के प्रतिनिधि होने के नाते, वे जनता के कल्याण के लिए जवाबदेह हैं। LG को अधिक शक्तियाँ प्राप्त होने की स्थिति में संभव है कि LG जनकल्याण से सम्बंधित किसी मामले में मंत्रिपरिषद द्वारा लिए गए नीतिगत निर्णय को मंजूरी ना प्रदान करे।
- **केंद्र के समानांतर शक्ति** - प्रशासक को निर्वाचित सरकार की अवहेलना कर, जनता से सीधे मिलना, निर्देश देने या निरीक्षण आदि से सम्बंधित कार्य नहीं करने चाहिए। प्रशासक को सरकार के साथ समन्वय के साथ कार्य करना चाहिए।
- **लेफ्टिनेंट गवर्नर और मुख्यमंत्री के बीच शक्ति संतुलन का अभाव** - लेफ्टिनेंट गवर्नर मंत्रीमंडल के निर्णय को प्रायः अस्वीकार कर देते हैं जो कि संविधान की परिकल्पना के विपरीत है क्योंकि विधायिका और मंत्रिपरिषद का वित्तीयन लोक निधि (पब्लिक फंड) से होता है।
- **अनुच्छेद 240 (1)** के अनुसार विधायी निकाय के सृजन के बाद राष्ट्रपति का प्रशासनिक नियंत्रण समाप्त हो जाता है इसलिए राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त प्रशासक के पास निर्वाचित प्रतिनिधियों की परिषद से अधिक शक्ति नहीं हो सकती है।

संघ शासित प्रदेश और इसका प्रशासन :

- प्रत्येक संघ शासित प्रदेश का प्रशासन राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त "प्रशासक" के माध्यम से किया जाता है।
- संघ शासित प्रदेश के "प्रशासक" के पास राज्य के राज्यपाल के समान शक्तियां प्राप्त होती हैं लेकिन वह राष्ट्रपति का प्रतिनिधि है न की राज्य का संवैधानिक प्रमुख।
- प्रशासक को लेफ्टिनेंट गवर्नर, मुख्य आयुक्त या प्रशासक के रूप में नामित किया जा सकता है।
- संविधान के अनुच्छेद 239 और 239AA के तहत प्रशासनिक शक्तियां और कार्यों को परिभाषित किया गया है।

VISION IAS

राज्य और संघ शासित प्रदेशों के मध्य शक्तियों का अंतर:

- केंद्र सरकार संघ शासित प्रदेशों के संदर्भ में राज्य सूची के सभी विषयों पर विधायी तथा कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग कर सकती है जबकि पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त क्षेत्रों में सरकार द्वारा इन शक्तियों का प्रयोग संभव नहीं है।
- अनुच्छेद 240 के अनुसार, राष्ट्रपति को संघ शासित प्रदेशों के लिए विनियम बनाने की शक्ति प्राप्त है, जब तक कि उस राज्य के लिए कोई विधायिका न हो। यहां तक कि अगर कोई विधायिका है, तो प्रशासक उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए आरक्षित कर सकता है, जो धन विधेयक को छोड़कर इसे अस्वीकार कर सकता है।
- राज्यपाल राज्यों में मुख्यमंत्रियों की नियुक्ति करता है लेकिन राष्ट्रपति केंद्र शासित प्रदेश के लिए मुख्यमंत्री और मंत्रियों की नियुक्ति करता है, जो राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत पद धारण करता है।
- "न्यायिक आयुक्त" से सम्बंधित कुछ विधायी प्रस्तावों के लिए प्रशासक की पूर्व मंजूरी आवश्यक है।
- UT सरकार के निम्नलिखित विषयों से सम्बंधित किसी विधेयक या विधेयक में संशोधन पेश करने से पूर्व प्रशासक की अनुमति आवश्यक होती है
  - टैक्स के अधिरोपण, उन्मूलन, छूट, परिवर्तन या विनियमन से सम्बंधित विषय
  - वित्तीय उत्तरदायित्व से संबंधित किसी कानून में संशोधन के प्रस्ताव
  - UT की संचित निधि से सम्बंधित कोई विषय

लेफ्टिनेंट गवर्नर के पक्ष में तर्क:

- पुडुचेरी सरकार के कार्यसंचालन से सम्बंधित नियम 21 (5) - इसके अनुसार, प्रशासक किसी भी मामले से संबंधित फाइल की मांग कर सकता है और किसी संदेह या प्रश्न पर अद्यतन सूचना हेतु मुख्यमंत्री से अनुरोध कर सकता है।
- अनुच्छेद 239AA - परंतु LG और उसके मंत्रियों के बीच किसी विषय पर मतभेद की स्थिति में, उप-राज्यपाल उसे राष्ट्रपति को विनिश्चय के लिए निर्देशित करेगा और राष्ट्रपति द्वारा उस पर किए गए विनिश्चय के अनुसार कार्य करेगा तथा ऐसा विनिश्चय होने तक उप-राज्यपाल किसी ऐसे मामले में, जहाँ वह विषय, उसकी राय में, इतना आवश्यक है जिसके कारण तुरंत कार्रवाई करना उसके लिए आवश्यक है वहां, उस विषय में ऐसी कार्रवाई करने या ऐसा निदेश देने के लिए, जो वह आवश्यक समझे, सक्षम होगा।
- दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले - दिल्ली के मुख्यमंत्री और प्रशासक से संबंधित मामले में दिल्ली के उच्च न्यायालय ने अगस्त 2016 में प्रशासक की सर्वोच्चता को बरकरार रखा।

नियम 47 - **इसके अनुसार, प्रशासक मुख्यमंत्री के परामर्श से संघ शासित प्रदेश की सरकार में सेवा करने वाले अधिकारियों की सेवा शर्तों को विनियमित करता है।**

पुडुचेरी और दिल्ली के प्रशासक के बीच शक्तियों मे अंतर :

दिल्ली के प्रशासक को पुडुचेरी के प्रशासक की तुलना मे अधिक शक्ति प्राप्त है। दिल्ली के प्रशासक के पास "कार्यपालिका शक्ति" है जो उसे सार्वजनिक व्यवस्था, पुलिस और भूमि से जुड़े मामलों में मुख्यमंत्री से परामर्श लेने के पश्चात कोई भी निर्देश देने की शक्ति प्रदान करता है, यदि उसे यह शक्ति अनुच्छेद 239 के तहत राष्ट्रपति द्वारा जारी किसी भी आदेश के तहत प्रदान की गई हो।

दिल्ली का प्रशासक गवर्नमेंट ऑफ़ नेशनल कैपिटल टेरिटरी ऑफ़ डेल्ही एक्ट, 1991 और ट्रांजैक्शन ऑफ़ बिज़नेस ऑफ़ गवर्नमेंट ऑफ़ नेशनल कैपिटल टेरिटरी ऑफ़ डेल्ही रूल्स 1993 द्वारा निर्देशित है जबकि पुडुचेरी का प्रशासक गवर्मेंट ऑफ़ यूनियन टेरिटरी एक्ट 1963 द्वारा निर्देशित होता है।

संविधान के अनुच्छेद 239 एवं 239 AA और गवर्नमेंट ऑफ़ नेशनल कैपिटल टेरिटरी ऑफ़ डेल्ही एक्ट, 1991 में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि पुडुचेरी की तुलना मे केंद्र को दिल्ली के संबंध में अधिक अधिकार प्राप्त है।

आगे की राह

राज्य के राज्यपाल की तुलना में संघ शासित प्रदेश के प्रशासक को अधिक शक्तियां हैं। हालांकि, प्रशासक को अपनी मार्गनिर्देशन क्षमताओं द्वारा सरकार को निर्देश एवं सलाह प्रदान करना चाहिए और निर्वाचित सरकार को प्रशासन में प्राथमिकता देनी चाहिए। वर्तमान में, पुडुचेरी विधान सभा ने एक प्रस्ताव पारित किया है जिसके तहत केंद्र सरकार से गवर्मेंट ऑफ़ यूनियन टेरिटरी एक्ट 1963 में आवश्यक संशोधन की मांग की गई है। इस प्रस्ताव में निर्वाचित सरकार की शक्तियों में वृद्धि और लेफ्टिनेंट गवर्नर की शक्तियों में कमी करने की अनुशंसा की गई है।

VISION IAS

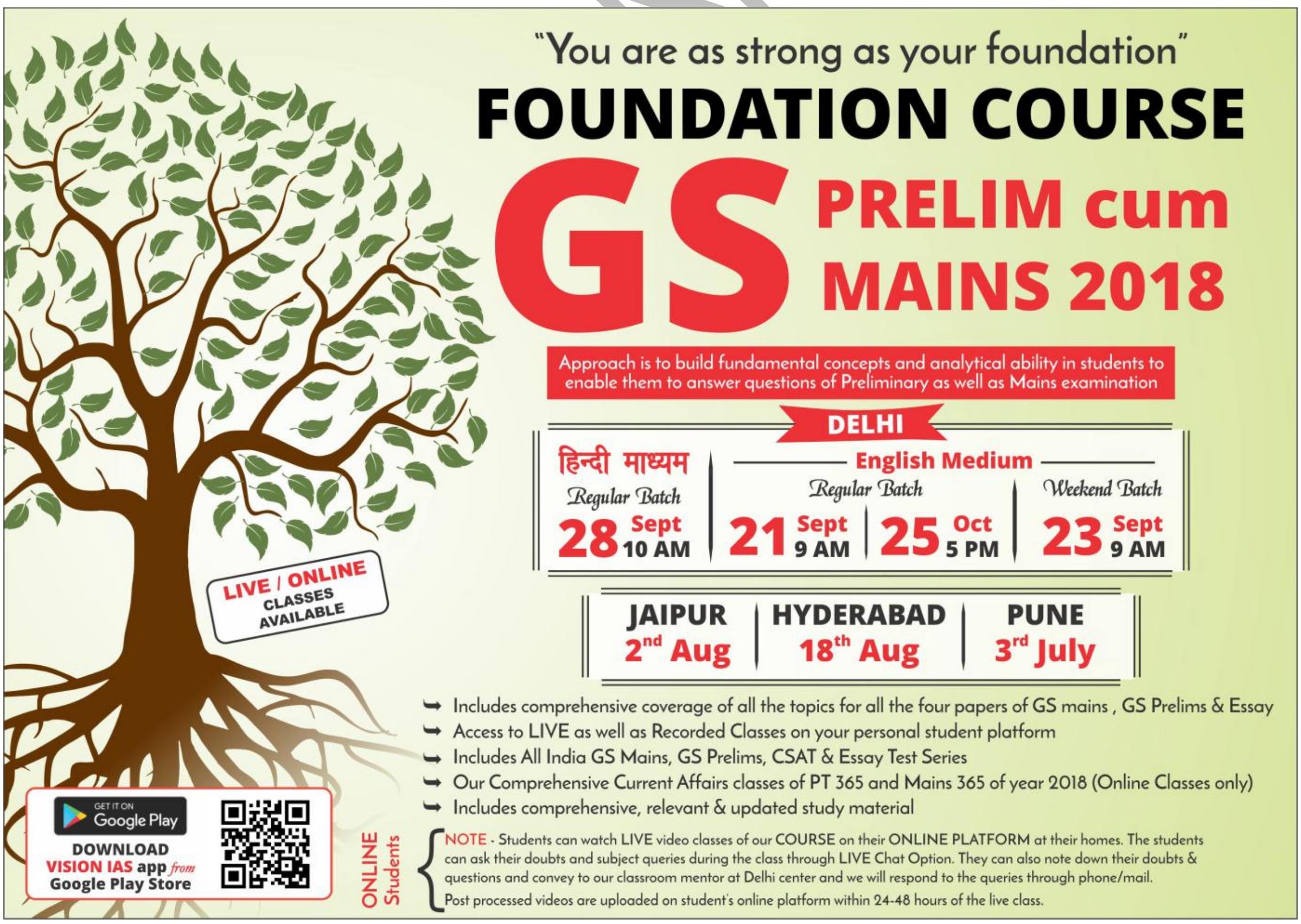

2. संविधान से सम्बंधित मामलें

(ISSUES RELATED TO CONSTITUTION)

2.1. वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

(Freedom of Speech and Expression)

2.1.1. मानहानि

(Defamation)

सुर्खियों में क्यों?

- हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने आपराधिक मानहानि कानून की वैधता को बरकरार रखा। सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक मानहानि से संबंधित भारतीय दंड संहिता की धारा 499 और 500 की संवैधानिक वैधता को चुनौती देने वाली याचिकाओं पर अपना फैसला सुनाया।
- अदालत ने मानहानि हेतु कारावास संबंधी प्रावधान पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि हालांकि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार राष्ट्र के लिए “सर्वाधिक मूल्यवान और वांछित मूल्यों” में से एक है, कारावास मानहानि से संबंधित वक्तव्यों के लिए आनुपातिक रूप से उचित दंड है।

- IPC की धारा 499 और 500 मानहानि के दोषी सिद्ध हो जाने पर किसी व्यक्ति के लिए 2 वर्ष के कारावास का प्रावधान करती है।

इसे क्यों कायम रखा जाना चाहिए?

सुप्रीम कोर्ट के अनुसार:

- संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित व्यक्ति की प्रतिष्ठा का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के समान ही महत्वपूर्ण अधिकार है।
- मानहानि के कृत्य को आपराधिक कृत्य मानना व्यक्ति की गरिमा और प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए एक "युक्तियुक्त निर्बन्धन" है।
- संपादकों को उनके द्वारा प्रकाशित समस्त सामग्री की जिम्मेदारी लेनी चाहिए क्योंकि इसका व्यक्ति और देश के जीवन पर दूरगामी प्रभाव होता है।
- किसी व्यक्ति के द्वारा अभिव्यक्त अभिव्यक्ति को वक्ता और उसके द्वारा बोले गए स्थान, श्रोता इत्यादि दोनों के परिप्रेक्ष्य से देखा जाना चाहिए।

अन्य तर्क

- यह 70 से अधिक वर्षों से विधिक कानूनों का हिस्सा रहे हैं। इस धारा ने न तो हमारे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को सीमित किया है न ही हमारे जीवंत लोकतंत्र को कोई क्षति पहुचाई है।
- सार्वजनिक हित के सवाल पर "वैध आलोचना" के लिए संरक्षण निम्नलिखित धाराओं के अंतर्गत उपलब्ध है:
  - मानहानि से संबंधित नागरिक कानून
  - आईपीसी की धारा 499 के तहत अपवाद खंड
- न्यायालय का मानना था कि केवल कानून का दुरुपयोग किसी कानून को अवैध ठहराने का आधार नहीं हो सकता अपितु अधीनस्थ न्यायालयों के द्वारा इन प्रावधानों के दुरुपयोग के संबंध में संवेदनशीलता प्रदर्शित की जानी चाहिए।
- नागरिक मानहानि कानूनों के अंतर्गत मौद्रिक मुआवजा, प्रतिष्ठा को पहुचाई गयी क्षति के सन्दर्भ में आनुपातिक रूप से पर्याप्त नहीं है।

इस निर्णय का महत्व

- इस निर्णय से **सामूहिक साझा मूल्यों** का महत्व बढ़ेगा तथा यह इसे **संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत मौलिक अधिकार का दर्जा** प्रदान **करेगा।**

VISION IAS

- इस निर्णय के अनुसार, अधिकारों के संतुलन का सिद्धांत यह निर्धारित करता है कि वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ यह प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह किसी दूसरे की स्वतंत्रता को बाधित न करे। हमारे संविधान का अनुच्छेद 21 गरिमा के साथ जीने की गारंटी देता है, इसलिए अगर किसी की प्रतिष्ठा-हानि होती है तो यह एक अपराध है।

इसे क्यों समाप्त कर दिया जाना चाहिए ?

- अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एक जीवंत लोकतंत्र के लिए महत्वपूर्ण है तथा किसी भी अभिव्यक्ति के लिए अपराधी ठहराए जाने का भय ही सत्य का गला घोटने के लिए पर्याप्त है।
- अपुष्ट तथ्यों के आधार पर की गई किसी भी आलोचना को, प्रतिष्ठा को क्षति पहुचाने वाला ठहराया जा सकता है ।
- व्यक्तिगत स्तर पर प्रदान किये गये प्रतिष्ठा के अधिकार को सरकार जैसी सामूहिक स्वरुप की संस्थाओं को प्रदान नहीं किया जा सकता।
- इस संबंध में यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि ऐसी संस्थाओं के पास अपनी प्रतिष्ठा को पुनः अर्जित करने हेतु पर्याप्त साधन उपलब्ध होते हैं।
- प्रत्येक तारीख पर एक वकील के साथ-साथ व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने जैसी आपराधिक मामलों के संबंध में निर्धारित प्रक्रिया आरोप लगाये गए व्यक्तियों के लिए एक सजा के समान ही है।
- यह देखते हुए कि मानहानि के लिए एक नागरिक संहिता में पहले से ही प्रावधान मौजूद है, व्यक्ति को उत्पीड़ित, परेशान और भयभीत करने के अतिरिक्त इस प्रावधान को बनाए रखने का अन्य कोई उद्देश्य नहीं है।
- इन धाराओं को कायम रखना मानहानि को अपराध न माने जाने के वैश्विक रुख के विपरीत है।
  - श्रीलंका सहित कई पड़ोसी देशों ने मानहानि को अपराध की कोटि से बाहर रखा है।
  - वर्ष 2011 में यह देखते हुए कि आपराधिक मानहानि से संबंधित कानूनी प्रावधान के कारण लोग व्यवस्था में व्याप्त त्रुटियों की आलोचना करने अथवा उन्हें उदघाटित करने में भय एवं संकोच का अनुभव करते हैं , नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों के अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय से संबंधित मानव अधिकार समिति ने, आपराधिक मानहानि को समाप्त करने हेतु राज्यों से आह्वान किया।

2.1.2. धारा 295A

(SECTION 295A)

सुर्ख़ियों में क्यों?

- हाल ही में, सर्वोच्च न्यायालय ने IPC की धारा 295A के तहत वर्ष 2013 में महेंद्र सिंह धोनी को एक पत्रिका के मुखपृष्ठ पर भगवान विष्णु के रूप में चित्रित करने के मामले में M.S.धोनी और पत्रिका के सम्पादक के विरुद्ध दायर किए गये एक आपराधिक मामले को रद्द कर दिया।

निर्णय की मुख्य विशेषताएं:

- धारा 295A में यह आवश्यक है कि कार्यवाही जानबूझकर, बिना किसी उचित कारण या बहाने के धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने की भावना से की गयी हो।
- यह धारा केवल धर्म के विरुद्ध अपमान के उन गम्भीर स्वरूपों पर ही लागू होती है, जिनसे कानून व्यवस्था भंग होती हो। 1957 के एक निर्णय में इसे पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है।
- इस निर्णय में किसी भी समूह के धार्मिक/जातीय/सांस्कृतिक भावनाओं के अपमान से संबंधित अल्प महत्त्वपूर्ण एवं छोटे मामलों में अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा प्रतिक्रियात्मक संज्ञान लेने के सन्दर्भ में भी चेतावनी दी गयी है।

निर्णय का प्रभाव:

- इससे धारा 295A की व्यक्तिपरकता (subjectivity) के कारण होने वाले दुरूपयोग में कमी आएगी, क्योंकि निर्णय में बिना किसी दुर्भावना के की गयी अनौपचारिक टिप्पणियों पर इसकी प्रासंगिकता को सम्मलित नहीं किया गया है।
- यह निर्णय इस धारा की सीमा को भी स्पष्ट करता है, जिससे व्यक्तियों और सार्वजनिक हस्तियों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं और अति-उत्साही प्रशासनिक अधिकारियों (overzealous administrative authorities) से लोगों की रक्षा करने में सहायता मिलेगी।
- यह संविधान के अनुच्छेद 19 और अनुच्छेद 25 के मध्य संतुलन को पुनः स्थापित करता है।

VISION IAS

धारा 295A

इस धारा में यह उल्लेख है कि जो भी भारत के नागरिकों के किसी भी वर्ग की धार्मिक भावनाओं को जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण अभिप्राय से उकसाता या भड़काता है (लिखित या मौखिक, या संकेतों या प्रत्यक्ष रूप से या अन्य निरूपण द्वारा), अपमानित करता है, या धर्म या उस वर्ग की धार्मिक मान्यताओं का अपमान करने का प्रयास करता है, उसे तीन वर्ष का कारावास, या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा।

2.1.3.प्रेस और मीडिया की स्वतंत्रता

(Freedom of Press and Media)

- प्रेस को विभिन्न विवादित और अन्य क्षेत्रों में सरकारी आदेशों के द्वारा विभिन्न समस्याओं और प्रतिबंधों का सामना करना पड़ रहा है। मीडियाकर्मियों को जहाँ कानून के माध्यम से सेंसरशिप का प्रयोग करने की शक्ति संपन्न राज्य का सामना करना पड़ रहा है तो वहीं दूसरी ओर उन पर अपने संस्करणों को प्रकाशित करने हेतु विभिन्न समूहों की ओर से दबाव डाला जा रहा है।
- **'रिपोर्टर्स विदआउट बॉर्डर्स'** द्वारा प्रकाशित **'वर्ल्ड प्रेस फ्रीडम इंडेक्स 2017'** में भारत को 180 देशों में 136वें स्थान पर रहा।
- हाल ही में निम्नलिखित प्रकरणों के कारण प्रेस की स्वतंत्रता सुर्ख़ियों में रही:
    - नेशनल सोशलिस्ट काउंसिल ऑफ नागालैंड-खापलांग (NSCN-K) से संबंधित किसी भी समाचार को प्रकाशित करने के लिए समाचार एजेंसियों को प्रतिबंधित कर दिया गया। ऐसे किसी भी समाचार का प्रकाशन, गैर-कानूनी गतिविधि (निवारण) अधिनियम, 1967 के तहत अतिक्रमण माना गया।
    - सूचना और प्रसारण मंत्रालय द्वारा गठित अंतर-मंत्रालयी समिति द्वारा हिंदी चैनल NDTV इण्डिया को एक दिन के लिए बंद करने का आदेश दिया गया। इस चैनल पर पठानकोट हमलों के कवरेज के दौरान "रणनीतिक रूप से संवेदनशील" सूचनाओं का खुलासा करने का आरोप लगाया गया।
    - CBFC द्वारा फिल्मों पर प्री-सेंसरशिप लागू करना।

मुद्दे

- सरकार के ये निर्णय मीडिया और भारत के नागरिकों को प्राप्त स्वतंत्रता का उल्लंघन करते हैं।
- न्यायिक हस्तक्षेप या निरीक्षण के बिना प्रतिबंध आरोपित करना संविधान की मूल भावना और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विपरीत है।
- बहु-नियामकीय निकायों और स्व-नियमन के अप्रभावी होने के कारण विनियमन संबंधी अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। सोशल मीडिया क्षेत्र में नियामकीय निकाय अनुपस्थित हैं।

नियामक तंत्र की वर्तमान स्थिति

- भारत में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अधिकांशतः स्व-विनियमित है।
- अनेक निजी चैनल्स द्वारा न्यूज़ ब्रॉडकास्टिंग स्टैंडर्ड्स अथॉरिटी (NBSA) ऑफ़ इंडिया की स्थापना की गयी है जो ब्राडकास्ट संबंधी मानकों की स्थापना एवं दिशानिर्देशों को जारी करता है।
- NBSA को चेतावनी देने, निंदा करने, सेंसर, अस्वीकृति व्यक्त करने और कोड के उल्लंघन के लिए ब्रॉडकास्टर पर 1 लाख रूपये तक का जुर्माना लगाने की शक्ति दी गई है।
- किसी अनुचित गतिविधि को रोकने के लिए सरकार भी चैनलों को दंडित कर सकती है जैसे: एक दिन या उससे अधिक के लिए उनके प्रसारण पर रोक लगा देना।
- फिल्म सेंसरशिप से सम्बंधित प्रावधानों को सिनेमैटोग्राफ अधिनियम, 1952 और सिनेमैटोग्राफ (प्रमाणन) नियम, 1983 द्वारा नियंत्रित किया जाता है।

आगे की राह

- किसी आतंकवादी हमले या विद्रोह की स्थिति में प्रसारण या प्रकाशन के संबंध में विस्तृत दिशानिर्देश निर्धारित होने चाहिए।
- सरकार को सूचनाओं के लीकेज को रोकने हेतु मीडिया, सशस्त्र बलों और सभी हितधारकों के साथ मिलकर एक प्रभावी तंत्र के निर्माण के लिए कार्य करना चाहिए।

VISION IAS

- किसी संवेदनशील मुद्दे को प्रसारित या प्रकाशित करने के सम्बन्ध में मीडिया एवं प्रेस को अधिक जिम्मेदारी पूर्वक कार्य करना चाहिए।
- टेलिवाइज़ प्रेस की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए प्रेस कौंसिल ऑफ इंडिया की तर्ज पर एक स्वतंत्र टेलीविजन मीडिया वॉचडॉग स्थापित करने की आवश्यकता है। UK में क़ानून द्वारा मान्यता प्राप्त एक स्वतंत्र मीडिया वॉचडॉग **ऑफिस ऑफ कम्युनिकेशंस (Ofcom)** की स्थापना की गई है तथा इसे प्रवर्तन संबंधी शक्तियां भी प्रदान की गई है।
- प्री-ब्रॉडकास्ट या प्री-पब्लिकेशन सेंसरशिप भी मीडिया के नियमन का एक उपाय हो सकता है लेकिन इसे हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 19 (1) (a) और 19 (2) के आधार पर निरस्त कर दिया है।
- सुप्रीम कोर्ट और संसदीय समितियों द्वारा दिए गए निम्नलिखित सुझाव भी संभावित विकल्प हो सकते हैं:
  - सर्वोच्च न्यायालय ने (सूचना और प्रसारण मंत्रालय सचिव बनाम बंगाल क्रिकेट एसोसिएशन वाद में) TRAI की तर्ज पर एक स्वतंत्र प्रसारण मीडिया प्राधिकरण की स्थापना के लिए सुझाव दिया।
  - मई 2013 में, सूचना प्रौद्योगिकी पर स्थायी संसदीय समिति (2012-2013) ने सिफारिश की है कि या तो प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की प्रकाशन सामग्री की जांच करने के लिए एक वैधानिक निकाय की स्थापना की जाए या PCI को कोड के उल्लंघन के लिए दंडित करने की वास्तविक शक्तियां प्रदान की जाए।
- विभिन्न विनियमन एजेंसियों द्वारा विनियमन पर वार्षिक रिपोर्ट के साथ दिशानिर्देशों को नियमित रूप से अपडेट करना चाहिए। उदाहरण के लिए CBFC को चाहिए कि:
  - फिल्म उद्योग में प्रचलित वर्तमान प्रवृत्तियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन कर अपनी वार्षिक रिपोर्ट केंद्र सरकार को प्रस्तुत करें तथा इसे प्रत्येक वर्ष संसद में प्रस्तुत किया जाए।
  - क्षेत्रीय अधिकारियों और क्षेत्रीय एवं केंद्रीय सलाहकार पैनलों के कार्य की समीक्षा करें।
  - फिल्मों के प्रमाणन के लिए निर्धारित दिशानिर्देशों की समय-समय पर समीक्षा करें।

लोकतंत्र में मीडिया अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। अतः मीडिया की स्वतंत्रता को संतुलित करने के साथ-साथ इसके विनियमन के लिए एक प्रभावी तंत्र के निर्माण की आवश्यकता है। मीडिया समाज में लोगों के विचारों को व्यापक रूप से प्रभावित करता है। अतः इस पर कुछ सीमा तक विनियमन आवश्यक है। लेकिन विनियमन इस प्रकार से किया जाना चाहिए कि इसके द्वारा कलात्मक अभिव्यक्ति, भाषण की स्वतंत्रता आदि प्रतिबंधित न हो।

2.2. चयन का अधिकार

(Right to choose)

सुर्ख़ियों में क्यों ?

हाल ही में, बिहार राज्य बनाम भारतीय मादक पेय कंपनियों के परिसंघ (2016) मामले में पटना उच्च न्यायालय ने बिहार में मादक पदार्थों पर लगाए गए 'निषेध' को असंवैधानिक करार दिया।

पृष्ठभूमि

- बिहार सरकार ने बिहार उत्पाद शुल्क अधिनियम, 1915 के तहत एक अधिसूचना जारी कर एल्कोहल के विनिर्माण, बिक्री और वितरण तथा साथ ही इसके उपभोग या संग्रहण पर प्रतिबंध लगा दिया था।
- इसके साथ ही इसके द्वारा ऐसे मामलों में अपनी बेगुनाही साबित करने की जिम्मेदारी अभियुक्त पर डाल दी गयी। यह पूर्व प्रचलित विधि के विपरीत है।
- हालांकि उच्चतम न्यायालय ने, पटना उच्च न्यायालय के फैसले के क्रियान्वयन पर रोक लगा दी तथा बिहार में एक कठोर निषेध कानून को बनाए रखने की अनुमति दी।

पटना उच्च न्यायालय के फैसले का महत्व

- इस मामले में पहली बार एक संवैधानिक न्यायालय ने इस प्रकार की निषेधाज्ञा द्वारा एक नागरिक के जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार पर पड़ने वाले प्रभाव के प्रश्न को संबोधित किया।
- इसका अर्थ यह है कि ये बहस सिर्फ निर्माताओं और डीलरों के व्यापार करने के अधिकार के बारे में नहीं थी, अपितु इसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रश्न भी निहित है।

VISION IAS

चयन की स्वतंत्रता के विषय में उच्चतम न्यायालय के दृष्टिकोण के संबंध में उठने वाले मुद्दे

- अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार के दायरे के सन्दर्भ में सर्वोच्च न्यायालय का दृष्टिकोण काफी हद तक चतुर्थ भाग में निहित सामाजिक आर्थिक अधिकारों को समाहित करने पर आधारित है। लेकिन यह किसी व्यक्ति के अच्छे जीवन को निर्धारित करने में उसके स्वयं के निर्णय के अधिकार पर ध्यान नहीं देता।
- उच्चतम न्यायालय द्वारा कई बार चयन के अधिकार का उल्लेख तो किया गया है, परंतु उसकी एक निश्चित संकल्पना नहीं निर्धारित की गयी है।
    - उदाहरण के लिए, उच्चतम न्यायालय ने *सुरेश कुमार कौशल बनाम नाज़ फाउंडेशन (2014)* के मामले में नाज़ फाउंडेशन के इस तर्क पर विचार करने से भी मना कर दिया कि LGBTQ समुदाय से संबंधित व्यक्तियों के अपने अधिकार भी हो सकते हैं।
    - यह निर्णय दिल्ली उच्च न्यायालय के एक निर्णय के बाद आया था जिसमें स्वैच्छिक समलैंगिक संबंधों को इस आधार पर विधिमान्य माना गया था कि इस पर रोक लगाने का अर्थ किसी व्यक्ति की निजता के अधिकार का उल्लंघन होगा, जो व्यक्ति के जीवन के अधिकार का एक अहम हिस्सा है। यहाँ निजता के अधिकार का अर्थ विशेष रूप से यौन सहभागी के चयन के सन्दर्भ में निर्धारित किया गया है।

चयन का अधिकार व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता सुनिश्चित करता है जिसका आशय है कि किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन से जुड़े उसके निर्णयों का सम्मान किया जाना चाहिए, जब तक कि वो समाज के लिए कोई गतिरोध उत्पन्न नहीं कर रहा/रही हो।
चयन के अधिकार से सम्बंधित अन्य निर्णय • बंबई उच्च न्यायालय ने शेख जाहिद मुख्तियार बनाम महाराष्ट्र राज्य (2016) के मामले में महाराष्ट्र पशु संरक्षण अधिनियम, 1976 के प्रावधानों को इस आधार पर निरस्त कर दिया था कि ये व्यक्ति के अपने निजी जीवन में अपनी रूचि के भोजन का उपभोग करने के अधिकार का उल्लंघन करते हैं, जो अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है। • बंबई उच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के स्वयं के प्रस्ताव बनाम महाराष्ट्र राज्य (2016) के मामले में यह निर्धारित किया कि किसी महिला को 'चयन (choice)' के आधार पर उसे गर्भपात करवाने का विधिक अधिकार प्राप्त है, भले ही मेडिकल टर्मिनेशन ऑफ़ प्रेगनेंसी एक्ट, 1971 केवल इस आधार पर गर्भपात की अनुमति देता है कि गर्भावस्था महिला के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती है।

आगे की राह

- विधि के शासन और मौलिक अधिकारों के अंतिम न्यायकर्ता के रूप में अपनी भूमिका में, सुप्रीम कोर्ट को अनुच्छेद 21 के संबंध में अपने पूरे दृष्टिकोण को फिर से परखने का उपयुक्त समय आ गया है।
- उदाहरण के लिए, यह इस मुद्दे पर, चयन के अधिकार को सार्थक जीवन जीने की आवश्यकता के रूप में समझ कर एक अधिक सरल दृष्टिकोण अपना सकता है।

2.3. पशु व्यापार पर प्रतिबंध

(Restrictions on Trade in Cattle)

केंद्र सरकार द्वारा पशु क्रूरता निवारण अधिनियम, 1960 के अंतर्गत पशु व्यापार को प्रतिबंधित करने के लिए 'पशु क्रूरता निरोधक (पशुधन बाजार नियमन) नियम, 2017' को अधिसूचित किया गया है।

इस निर्णय के पक्ष में मुख्य तर्क:

- पशु क्रूरता निवारण अधिनियम, 1960
- पशु बाज़ारों में पशुओं की दशा में सुधार करने संबंधी सुप्रीम कोर्ट के दिशानिर्देश।
- सुप्रीम कोर्ट का आदेश जिसके तहत सरकार को नेपाल में आयोजित होने वाले गढ़ीमाई मेले में पशुओं की होने वाली तस्करी को रोकने संबंधी दिशानिर्देशों को तैयार करने का निर्देश दिया गया था।

VISION IAS

नए नियम में महत्वपूर्ण प्रावधान

- देश भर में **वध के प्रयोजन से मवेशियों की खरीद-बिक्री पर प्रतिबंध**। अब पशुओं को केवल 'कृषि उद्देश्यों' के लिए ही खरीदा जा सकता है।
- **'मवेशी' शब्द को स्पष्ट करना-** अधिसूचना में 'मवेशी' शब्द के अंतर्गत सांड, बैल, गाय, भैंस, स्टीर्स (steer), हेइफ़र्स (heifers) और बछड़ों के साथ ही ऊंट को भी सम्मिलित किया गया है।

पशु क्रूरता निवारण अधिनियम, 1960

- यह पशुओं को अनावश्यक पीड़ा पहुँचाने से रोकने के लिए अधिनियमित किया गया है।
- यह जम्मू कश्मीर को छोड़कर पूरे भारत में लागू है।
- इस अधिनियम के तहत पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के अंतर्गत भारतीय पशु कल्याण बोर्ड की स्थापना की गई है।
- यह पशु बाजारों, डॉग ब्रीडर्स, एक्वेरियम और पालतू मछलियों की दुकान के मालिकों को नियंत्रित करता है।
- इस अधिनियम के तहत जानवरों से की जाने वाली निर्दयता को प्रतिबंधित किया गया है। इसमें शामिल हैं:
- पशुओं की पिटाई इत्यादि के माध्यम से उन्हें दर्द पहुँचाना
- उन्हें स्वेच्छा से तथा अनुचित रूप से दवाएँ देना
- पशुओं को अनुपयुक्त तरीके से पिंज़रे में रखने, ले जाने तथा हस्तांतरित करने के ज़रिए उन्हें दर्द और कष्ट पहुँचाना
- किसी भी जानवर का अंग-भंग करना इत्यादि।

- **विभिन्न कागजी कार्रवाई को लागू करना** - विक्रेता और खरीददार, दोनों के लिए।
- **पशु बाज़ार का विनियमन** - बाज़ारों को संचालित करने के लिए जिला पशु बाजार निगरानी समिति (डिस्ट्रिक्ट एनिमल मार्केट मॉनीटरिंग कमेटी: DAMMC) की मंज़ूरी को आवश्यक बनाया गया है। इसके साथ ही अन्य प्रावधानों में, कम उम्र के तथा अस्वस्थ पशुओं की बिक्री पर प्रतिबंध, पशु चिकित्सा निरीक्षक द्वारा प्रमाणन और इन बाजारों में बीमार पशुओं के लिए अलग से सुविधाओं की व्यवस्था शामिल है।
- **मवेशियों के अंतर्राज्यीय और अंतर्राष्ट्रीय आवागमन का विनियमन-** अब किसी राज्य की सीमा से 25 किलोमीटर और अंतर्राष्ट्रीय सीमा के 50 किमी के भीतर किसी भी पशु बाज़ार का आयोजन नहीं किया जाएगा। राज्य से बाहर पशुओं को ले जाने के लिए राज्य सरकार द्वारा नामित अधिकारी की विशेष अनुमति की आवश्यकता होगी।
- **क्रूर व्यवहारों पर रोक लगाना-** जैसेकि- पशुवध, सींग की रंगाई करना और भैंसों के कानों को काटना। इसके अलावा DAMMC द्वारा यह सुनिश्चित किया जाएगा कि कोई भी पशुओं को तकलीफदेह परिस्थितियों में अथवा उसके आकार के लिए अनुपयुक्त पिंजरे में न रखे।

इन नियमों का प्रभाव

यद्यपि पशुओं के परिवहन और इलाज़ के दौरान होने वाली क्रूरता को प्रतिबंधित करना स्वागत योग्य कदम है, लेकिन ये नए नियम पशु व्यापार से जुड़े विभिन्न हितधारकों को प्रभावित कर सकते हैं।

- **पशु मालिक/किसान** - किसी किसान की आय का लगभग 30% पशुधन से प्राप्त होता है, लेकिन अब उसे बूढ़े पशुओं का बोझ उठाने के लिए विवश होना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त, अब तक ये पशु, किसानों के लिए प्राकृतिक बीमा के रूप में भी कार्य करते थे। उदाहरण के लिए, "प्राकृतिक कारणों" से मरने वाले पशु के शव को भी बाजार में बेचा जा सकता था। परन्तु इन नियमों के अनुसार अब शव को जला दिया जाएगा और इनका उपयोग बेचने या चमड़ा निकालने के लिए नहीं किया जा सकेगा।
    - **बूचड़ खाने-** इन नियमों के कारण अब बूचड़खानों के लिए नियमित रूप से मांस की आपूर्ति सुनिश्चित करना कठिन हो जाएगा।
    - **चमड़ा और मांस उद्योग** - ये उद्योग बंद होने के कगार पर पहुँच जायेंगे क्योंकि बूचड़खानों में प्रयोग की जाने वाली 90% भैंसों को पशु बाजारों से खरीदा और बेचा जाता है, जिस पर अब प्रतिबंध लगा दिया गया है। अब उनकी आपूर्ति श्रृंखला बाधित हो जाएगी। इससे बेरोज़गारी भी बढ़ सकती है।
    - **उपभोक्ता-** यह गरीबों को सस्ते पौष्टिक भोजन के स्रोत से दूर कर देगा।
    - **निर्यात-** भारत को लगभग 30,000 करोड़ रुपये की निर्यात-हानि हो सकती है।

- **पर्यावरण-** भारत में लगभग 80 मिलियन पशु अनुत्पादक हैं। सरकारी और निजी गौशालाओं द्वारा केवल 5-10% पशुओं की देखभाल की जाती है। इस प्रकार, बाकी पशु पर्यावरण और स्वच्छता संबंधी चिंताओं का कारण बन सकते हैं क्योंकि उनके मालिक इन पशुओं की देखभाल नहीं कर सकते।

नियमों से संबंधित अन्य मुद्दे

- **अपने मूल अधिनियम के विरुद्ध** - मूल अधिनियम भोजन के लिए मवेशियों के वध को क्रूरता के रूप में वर्गीकृत नहीं करता है। इस प्रकार नए नियमों को अवैध माना जा सकता है क्योंकि इनमें वध या बलि के लिए बाज़ारों से पशुओं की बिक्री पर रोक लगा दी गई है, जिसे मूल अधिनियम में स्वीकृति प्रदान की गई थी। इसके साथ ही न्यायालय ने विशेष रूप से यह भी स्पष्ट किया है कि अधिनियम की धारा-28 में यह आदेश दिया गया है कि किसी भी समुदाय में धर्म के अंतर्गत आवश्यक पशु बलि को अपराध नहीं माना जायेगा।
- **संघवाद के विरुद्ध** - इन नियमों के लिए 1960 के कानून को लागू करना राज्य की शक्तियों में हस्तक्षेप करने का एक बहुत बड़ा प्रयास है। ऐतिहासिक रूप से विभिन्न राज्यों द्वारा विभिन्न पशु वध कानूनों को पारित किया गया है। दृष्टव्य है कि 'कृषि' और 'पशुधन का संरक्षण' राज्यों की विशेष विधायी क्षमता के अंतर्गत आते हैं।
- **मौलिक अधिकारों के विरुद्ध** - भोजन के लिए पशुओं का वध एवं ऐसे पशुओं के मांस से बने व्यंजन आदि कुछ समुदायों की सांस्कृतिक पहचान का हिस्सा हैं। अतः इन पर लगाया गया प्रतिबन्ध अनुच्छेद-29 के विरुद्ध है जिस पर संविधान में कोई निर्बंधन नहीं लगाया गया है। यह नागरिक के भोजन, गोपनीयता एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का भी उल्लंघन करता है।
- व्यापार पर प्रतिबंध की तर्कसंगतता को अनुच्छेद-19(1)(g) के तहत कोई भी वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने के मौलिक अधिकार की कसौटी पर परीक्षण करने की आवश्यकता है।
- **कोई तर्कसंगत आधार नहीं** - कुछ पशुओं के लिए ही कानून बनाना अनुपयुक्त है। उल्लेखनीय है कि अन्य पशुओं को भी व्यापार तथा वध किए जाने पर समान पीड़ा का अनुभव करना पड़ता है।

संवैधानिक स्थिति

इस विवाद का इतिहास भारतीय गणराज्य की स्थापना के साथ ही प्रारम्भ हुआ था, जहाँ गो-हत्या का विषय बहस के सबसे भयावह और विवादास्पद विषयों में से एक था। गो-हत्या पर प्रतिबन्ध को मौलिक अधिकारों का हिस्सा बनाने की मांग किये जाने पर संविधान की ड्राफ्टिंग कमेटी ने भी इस पर अपनी सहमति व्यक्त की थी।

इसे अनुच्छेद-48 के अंतर्गत एक नीति-निदेशक तत्त्व के रूप में शामिल किया गया है, जिसमें कहा गया है कि राज्य "आधुनिक और वैज्ञानिक आधारों पर कृषि और पशुपालन प्रणालियों को संगठित करने का प्रयास करेगा तथा विशेष रूप से गायों एवं बछड़ों तथा अन्य दुधारू एवं वाहक पशुओं की नस्लों के परिरक्षण और सुधार करने और उनके वध को प्रतिबंधित करने के लिए कदम उठाएगा।

यहाँ तक कि सुप्रीम कोर्ट ने भी पिछले कुछ वर्षों में सरकार द्वारा किए गए पूर्ण प्रतिबंध के प्रयासों पर विभिन्न विरोधाभासी निर्णय (देखें बॉक्स) दिए हैं।

- 1958 के M.H. कुरैशी बनाम बिहार राज्य- वाद में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि दूध, ब्रीडिंग या भारवाही जानवरों के रूप में कार्य करने में सक्षम न रहने के बाद मादा भैंसों, बैलों या साँड़ों (मवेशी या भैंसे) को मारने पर पूरी तरह से प्रतिबंध को सामान्य जनता के हित में युक्तियुक्त नहीं माना जा सकता।
- 1996 में हसमतुल्ला बनाम मध्य प्रदेश राज्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि बैल और साँड़ों की हत्या पर पूर्ण प्रतिबंध कसाइयों के मौलिक अधिकारों पर एक अनुचित प्रतिबंध लगाएगा। हालांकि गायों, गाय के बछड़ों और भैंसों के कटड़े के वध पर प्रतिबंध बरकरार रखा गया।
- 2005 में गुजरात राज्य बनाम मिर्जापुर मोती कुरैशी कस्साब जमात- के मामले में न्यायालय ने कहा कि कई वर्षों से दुधारू या भारवाही मवेशियों की प्रजाति को "गायों या बछड़ों" की परिभाषा के अन्तर्गत शामिल किया जाना चाहिए। इस प्रकार कोर्ट ने M.H.कुरैशी मामले में दिए गए अपने निर्णय को आंशिक रूप से खारिज कर दिया।

2.4. इंटरनेट तक पहुँच का अधिकारः सर्वोच्च न्यायालय

(Right to Internet Access: Supreme Court)

सुर्ख़ियों में क्यों?

- सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक निर्णय में कहा था कि इंटरनेट तक पहुँच का अधिकार अभिव्यक्ति के मूल अधिकारों के अंतर्गत आता है और किसी भी सूरत में इसमें कटौती नहीं की जा सकती।

न्यायालय का निर्णय

- साबू मैथ्यू जॉर्ज द्वारा सर्च इंजन याहू, गूगल और माइक्रोसॉफ्ट के विरुद्ध दायर एक जनहित याचिका की सुनवाई के दौरान न्यायलय ने यह निर्णय सुनाया था। यह याचिका गर्भधारण पूर्व और प्रसव पूर्व निदान तकनीक (लिंग चयन प्रतिषेध) अधिनियम ,1994 (PCPNDT) {Pre-conception and Pre-natal Diagnostic Techniques (Prohibition of Sex Selection) (PCPNDT) Act, 1994} के खंड 22 के सख्त अनुपालन के लिए दायर की गई थी।
- न्यायालय ने कहा कि इंटरनेट तक पहुँच का अधिकार तब तक स्वीकार्य है, जब तक कि यह 'गैर-क़ानूनी तौर पर अपनी सीमा का अतिक्रमण' (encroaches into the boundary of illegality) नहीं करता।
- न्यायालय ने कहा कि यदि कोई भारत में चिकित्सा पर्यटन की जानकारी के लिए इंटरनेट का उपयोग करना चाहता है तो वह ऐसा कर सकता है, और ऐसा करने का अधिकार उसे तब तक है जब तक कि वह PCPNDT अधिनियम की धारा 22 के अंतर्गत विहित प्रतिबंधों का उल्लंघन नहीं करता।

इंटरनेट तक पहुँच का अधिकार

- 2015 में संयुक्त राष्ट्र ने इंटरनेट तक पहुँच को मानवाधिकार के रूप में घोषित किया।
- मार्च 2017 में, हर नागरिक के लिए इंटरनेट को मूलभूत अधिकार के रूप में घोषित करने वाला केरल पहला राज्य बना।

वर्तमान स्थिति

- इन तीनों इंटरनेट सर्च इंजनों ने सर्वोच्च न्यायालय को आश्वासन दिया है कि PCPNDT अधिनियम का उल्लंघन करने वाले विज्ञापनों का न तो वे विज्ञापन देंगे और न ही उन्हें प्रायोजित करेंगे।
- इन इंटरनेट सर्च इंजनों के लिए यह भी आवश्यक है कि उनके संस्थानिक विशेषज्ञ अवैध विषय-वस्तु की पहचान कर उन्हें हटाएं।
- अधिनियम की धारा 22 का उल्लंघन करने वाली आक्रामक सामग्री की पहचान के लिए नेट पर नजर बनाए रखने हेतु राज्य-स्तर पर नोडल अधिकारी नियुक्त किए गए हैं।

2.5 राष्ट्रीय प्रतीकों का सम्मान

(Respecting National Symbols)

सुर्ख़ियों में क्यों?

श्याम नारायण चौकसे मामले में (राष्ट्र गान आदेश), उच्चतम न्यायालय ने सभी सिनेमा हॉल को फिल्मों
के प्रारम्भ में राष्ट्र गान बजाने का निर्देश दिया।

DOS AND DON'TS
Rules laid down by the Supreme Court
- Cinemas must play the national anthem before a film is screened
- All those in hall must stand and show respect
- When the anthem is played, the national flag will be shown on screen
- Doors will be closed before anthem is played, and opened after it's over
- No commercial exploitation of anthem
- Anthem cannot be dramatised or included in variety show
- Abridged version cannot be played
- Cannot be printed on any object and displayed in manner 'tantamount to disrespect'

तत्पश्चात इसी मामले में, श्याम नारायण चौकसे ने संसद को संविधान के अनुच्छेद 51A(a) के तहत राष्ट्र गान और राष्ट्र ध्वज के लिए 'सम्मान' को परिभाषित करने या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सरकार को दिशानिर्देश तैयार करने हेतु परमादेश जारी करने को कहा था।

प्रतिक्रिया स्वरुप, केंद्र सरकार ने कहा कि राष्ट्र गान और राष्ट्र ध्वज का सम्मान "राष्ट्रीय गौरव का विषय है और इससे समझौता नहीं किया जा सकता है।"

राष्ट्रीय प्रतीकों के बारे में विधान और नियम

- संविधान के **अनुच्छेद 51A** के तहत भारत के प्रत्येक नागरिक का यह मूल कर्तव्य है कि वह संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गान का आदर करे।
- **प्रिवेंशन** ऑफ इंसल्ट्स टू **नेशनल ऑनर एक्ट, 1971** संविधान, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गान के

VISION IAS

अपमान के मामले से संबंधित है और इन प्रतीकों के अपमान पर दंडात्मक प्रावधान करता है।

- भारतीय ध्वज संहिता, 2002 एक क़ानून नहीं है बल्कि भारत सरकार द्वारा समय-समय पर जारी कार्यकारी निर्देशों का एक समेकन है और इसके तहत राष्ट्र ध्वज के अपमान पर रोक लगाने वाले व्यवहारों पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

2.5.1. राष्ट्रीय गीत का प्रचार

(Promotion of National Song)

सुर्ख़ियों में क्यों?

- सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्र गान, राष्ट्र ध्वज और एक राष्ट्रीय गीत के प्रचार-प्रसार के लिए संविधान के **अनुच्छेद 51 A** के तहत, केंद्र सरकार को राष्ट्रीय नीति तैयार करने पर दिशानिर्देश जारी करने हेतु दायर एक याचिका को खारिज कर दिया।
- सर्वोच्च न्यायालय ने कार्यालयों, अदालतों, विधानसभाओं और संसद में राष्ट्र गान अनिवार्य बनाने की याचिका को भी खारिज कर दिया।
- हालांकि अदालत ने, स्कूलों को काम के दिनों में राष्ट्र गान बजाना या गाना चाहिए इससे सम्बंधित याचिका को आगे विचार के लिए सुरक्षित रखा है।

प्रस्तुत तर्क:

- मौलिक कर्तव्यों को अनिवार्य नहीं बनाया जा सकता है। वे केवल लोगों को एक बेहतर नागरिक बनने से सम्बंधित दिशानिर्देश हैं तथा न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय नहीं हैं।
- सर्वोच्च न्यायालय ने यह इंगित किया है कि मौलिक कर्तव्यों में राष्ट्रीय गीत का उल्लेख नहीं किया गया है।
- राष्ट्रवाद और देशभक्ति की भावना को बढ़ावा देने के क्रम में राष्ट्रीय प्रतीकों का अनुपालन करने के लिए दबाव डालना नैतिक रूप से उचित विधि नहीं है।

महत्व

- राष्ट्र गान, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रीय गीत पर एक नीतिगत विचार को खारिज कर, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा राष्ट्रीय प्रतीकों को मोरल पुलिसिंग के साधन बनने से बचा लिया गया।
- इस निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने निर्देशित देशभक्ति के ऊपर व्यक्तिगत पसंद को महत्व दिया है।

आगे की राह

- क्रांतिकारी परिवर्तनों के बजाय क्रमिक रुप से छोटे-छोटे कदम उठाए जाने चाहिए। राष्ट्र ध्वज, राष्ट्र गान और गीतों पर लोगों को शिक्षित करने से नागरिकों के जीवन में उनकी स्वीकृति में उत्तरोत्तर वृद्धि होगी। नागरिक इनका प्रचार प्रसार करना अपना मूल कर्तव्य समझेंगे। उन पर एक नीतिगत निर्णय भविष्यवादी विषय प्रतीत होता है, जो वर्तमान समय में प्रासंगिक नहीं है।

प्रिवेंशन ऑफ इंसल्ट्स टू नेशनल ऑनर एक्ट, 1971 के तहत प्रावधान

- भारत के राष्ट्र ध्वज या भारतीय संविधान का अपमान करने के मामले में अधिनियम की धारा 2 के तहत जुर्माने के साथ या बिना जुर्माने के अधिकतम 3 वर्ष के कारावास का प्रावधान है।
- राष्ट्रीय ध्वज या संविधान के प्रति अनादर या अवमानना जैसे कि उसे जलाना, नष्ट करना, विकृत करना, अशुद्ध करना आदि सम्मिलित है।
- धारा 3 के तहत राष्ट्र गान के अपमान को अपराध घोषित किया गया है।

इस अधिनियम या भारतीय दंड संहिता, 1960 की किसी भी धारा के तहत राष्ट्र गान बजने के दौरान किसी नागरिक पर खड़े होने की अनिवार्यता लागू नहीं की गई है।

2.6. भाषा संबंधी मामलें

(Issues Related to Language)

2.6.1. संविधान की आठवीं अनुसूची

(Eighth Schedule of the Constitution)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हिन्दी के प्रोफेसरों के एक समूह ने हिन्दी की बोलियों जैसे भोजपुरी और राजस्थानी को संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित न करने हेतु प्रधानमंत्री को लिखा है।

VISION IAS

आठवीं अनुसूची के संबंध में

- संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाएँ सम्मिलित हैं। आरम्भिक रूप से संविधान की आठवीं अनुसूची में 14 भाषाएँ सम्मिलित थीं।
- 1967 में सिंधी भाषा को जोड़ा गया था। कोंकणी, नेपाली और मणिपुरी भाषाओं को 1992 में जोड़ा गया था।
- बोडो, डोगरी, मैथिली और संथाली को 2004 में जोड़ा गया था।
- वर्तमान में, आठवीं अनुसूची में न्यूनतम 38 और भाषाओं को जोड़े जाने की मांग है।
- आठवीं अनुसूची में भाषाओं के समावेश के लिए "मापदंडों का कोई स्थापित सेट नहीं" है।
- आठवीं अनुसूची में और अधिक भाषाओं के समावेश के लिए वस्तुनिष्ठ मापदंडों का सेट विकसित करने के लिए सीताकांत महापात्र समिति स्थापित की गई थी जिसने 2004 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।
- उपर्युक्त रिपोर्ट केन्द्र सरकार के विचाराधीन है।

2.6.2. हिंदी भाषा का संवर्धन

(Promotion of Hindi Language)

राजभाषा अधिनियम के अंतर्गत गठित एक पैनल ने 2011 में राष्ट्रपति को अपनी अनुशंसाएं प्रस्तुत की थीं। राष्ट्रपति ने इनमें से कुछ को हाल ही में कुछ अनुशंसाओं की सैद्धांतिक अनुमति दी है -

- मानव संसाधन विकास मंत्रालय को हिन्दी को अनिवार्य विषय बनाने हेतु विश्वसनीय प्रयास करने की आवश्यकता है। साथ ही सभी CBSE स्कूलों एवं KVS में दसवीं कक्षा तक हिन्दी अनिवार्य रूप से सिखाई जानी चाहिए।
- शीर्ष सरकारी पद धारण करने वाले, विशेष रूप से हिन्दी पढ़ने और बोलने में सक्षम व्यक्तियों को अपने भाषण/वक्तव्य हिन्दी में देने चाहिए।
- मंत्रालयों द्वारा आयोजित हिंदी कार्यशालाओं में अतिथि वक्ताओं को भी अन्य कार्यशालाओं के वक्ताओं के जैसे मानदेय दिया जाना चाहिए।
- हिंदी अनुवादकों और आकाशवाणी के सह-उदघोषकों को विदेशी भाषाओं के अनुवादकों के सामान वेतन दिया जाए।
- विभिन्न विभागों में हिंदी अधिकारियों की रिक्तियों को भरा जाना चाहिए ।
- गैर हिन्दी भाषी राज्यों के उच्च शिक्षण संस्थानों में उत्तर लिखने एवं साक्षात्कार देने हेतु वैकल्पिक भाषा के रूप में हिन्दी की अनुमति होनी चाहिए।
- रेलवे और एयर-इंडिया के टिकट में हिन्दी में भी सूचनाएं हों।

हिंदी भाषा को बढ़ावा देने का आधार

- **अनुच्छेद 351**: संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ उसके शब्द भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओँ से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।
- संसद एवं राज्य विधानमंडल में उपयोग की जाने वाली भाषा के संबंध में क्रमश: **अनुच्छेद 120 और 210** हिन्दी में भी कार्य-संचालन करने का विकल्प प्रदान करते हैं।
- **अनुच्छेद 343** संसद को कानून के माध्यम से सरकारी काम के लिए उपयोग की जाने वाली भाषा निर्धारित करने का विकल्प प्रदान करता है।
- **अनुच्छेद 344** राष्ट्रपति को संघ के सरकारी प्रयोजनों के लिए हिंदी भाषा के प्रगतिशील उपयोग एवं अंग्रेजी के प्रयोग पर प्रतिबंध हेतु अनुशंसाएं प्रदान करने के लिए प्रत्येक 10 वर्ष में संसदीय समिति गठित करने का प्रावधान प्रदान करता है।

इस आदेश का विरोध क्यों?

- यह एक और हिंदी विरोधी आंदोलन को जन्म दे सकता है।
- आलोचकों का तर्क है कि उत्तर भारत के लोग किसी भी दक्षिण भारतीय भाषा को सीखने का प्रयास तक नहीं करते हैं, तो दक्षिण भारत के लोगों को किसी विशिष्ट भाषा को सीखने के लिए विवश क्यों किया जाना चाहिए।

VISION IAS

- किसी राष्ट्र की एक ही भाषा होना आवश्यक नहीं है, उदाहरण के लिए- बेल्जियम और स्विट्जरलैंड जैसे छोटे राष्ट्रों तक में भी क्रमश: तीन एवं चार भाषाएं हैं।

2.7. निवारक निरोध

(Preventive Detention)

सुर्ख़ियों में क्यों?

- हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि किसी व्यक्ति को, राज्य द्वारा **'गुंडा'** करार देकर तथा सामान्य कानूनी प्रक्रियाओं को 'अप्रभावी' और 'ज़्यादा समय' लेने वाली बताकर निवारक निरोध के तहत हिरासत में नहीं लिया जा सकता। ऐसा करना **गैर कानूनी** होगा।
- तेलंगाना में गरीब किसानों को नकली बीज बेचने के आरोप में अधिकारियों द्वारा एक बीज निर्माता को निवारक निरोध के तहत (Telangana Prevention of Dangerous Activities of Bootleggers, Dacoits, Drug Offenders, Goondas, Immoral Traffic Offenders and Land Grabbers Act, 1986 के अंतर्गत) गिरफ्तार कर लिया गया था।

इस निर्णय के पक्ष में तर्क

- **नागरिकों की स्वतंत्रता**- निवारक निरोध, संविधान के अनुच्छेद 14,19, 21, 22 के तहत नागरिकों की स्वतंत्रता को प्रभावित करता है।
- **कार्यपालिका द्वारा विवेकाधीन शक्तियों का दुरुपयोग** - इस शक्ति की प्रकृति वैधानिक है। अतः जिस उद्देश्य के लिए इसे बनाया गया है, केवल उसी उद्देश्य के लिए इसका प्रयोग किया जाना चाहिए। अर्थात यह कानून की सीमा के दायरे में होना चाहिए।

निवारक निरोध के बारे में

निवारक निरोधक को सभी मौलिक अधिकारों में सबसे विवादास्पद माना जाता है। इसके अंतर्गत किसी व्यक्ति को संदेह के आधार पर संभावित अपराध करने से रोकने के लिए उपयुक्त ट्रायल के बिना गिरफ्तार किया जाता है। निवारक निरोध के चार प्रमुख आधार हैं:

- राज्य की सुरक्षा
- विदेशी मामले या भारत की सुरक्षा
- सार्वजनिक व्यवस्था को बनाये रखना
- आवश्यक सेवाएं तथा रक्षा एवं आपूर्ति का रख रखाव

निवारक निरोध के अंतर्गत गिरफ्तार बंदी को अनुच्छेद-19 या अनुच्छेद-21 के तहत उपलब्ध व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त नहीं होगा। इसके साथ ही अगर किसी व्यक्ति को निवारक निरोध के तहत निर्मित कानून के अंतर्गत हिरासत में लिया गया है तो व्यक्ति को अनुच्छेद-22(3) के तहत गिरफ्तारी और निरोध के विरुद्ध अनुच्छेद 22 (1) और 22(2) के अधीन संरक्षण प्राप्त नहीं होगा।

2.8. संसदीय प्रणाली बनाम राष्ट्रपति प्रणाली

(Parliamentary v/s Presidential System)

भारतीय संविधान में सरकार का संसदीय स्वरूप स्वीकार किया गया है। किन्तु यह बहस का मुद्दा बना हुआ है कि क्या भारत को संसदीय प्रणाली त्यागकर राष्ट्रपति प्रणाली अपना लेना चाहिए। विशेषकर अकादमिक स्तर पर इस विषय में विस्तृत वाद-विवाद चलते रहते हैं। भारत ने निम्नलिखित कारणों से संसदीय प्रणाली अपनाई:

- यह सरकार के विधायी और कार्यकारी अंगों के बीच सामंजस्य सुनिश्चित करता है क्योंकि इसके अंतर्गत कार्यपालिका विधायिका का ही भाग है। अतः कार्यपालिका और विधायिका अलग-अलग दलों से नहीं होते हैं। इससे संघर्ष व गतिहीनता की स्थिति नहीं आती है।
- यह स्थिरता की तुलना में उत्तरदायित्व को प्राथमिकता देती है क्योंकि मंत्री विधायिका के प्रति उत्तरदायी होते हैं।
- यह किसी एक व्यक्ति को शक्ति नहीं देती बल्कि सत्ता सामूहिक रूप से मंत्रिपरिषद में निहित होती है। इस प्रकार यह प्रणाली तानाशाही को रोकती है। कार्यपालिका के रूप में एक समूह कार्य करता है जिससे अधिक लोगों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित होता है।
- हम सरकार के इस स्वरूप से अधिक परिचित थे।

हालाँकि राष्ट्रपति प्रणाली दूसरे लाभ प्रदान करती है, जैसे कि

VISION IAS

- **स्थिर सरकार -** संसदीय शासन में सरकार जन प्रतिनिधियों की दया पर निर्भर होती है। किसी भी समय अविश्वास प्रस्ताव पारित कर सरकार गिरायी जा सकती है। इसके विपरीत राष्ट्रपति प्रणाली में सरकार एक निश्चित कार्यकाल के लिए चुनी जाती है।
- उपर्युक्त कारक नीतियों की निरंतरता और कार्यों की निर्णायक क्षमता को भी प्रभावित करता है।
- इस प्रणाली में सरकार विशेषज्ञों द्वारा चलायी जाती है क्योंकि राष्ट्रपति के पास अपने सलाहकारों का चयन करने के लिए व्यापक विकल्प उपलब्ध होते हैं। इसके विपरीत संसद के निर्वाचित मंत्री आमतौर पर विशेषज्ञ नहीं होते।
- सरकार का ध्यान राजनीति की बजाय नीतियों और प्रदर्शन पर अधिक केन्द्रित होता है क्योंकि सरकार की स्थिति सुरक्षित होती है।
- लोगों के मन में इस बात की स्पष्टता होती है कि वे अपने नेता के रूप में किसका चुनाव कर रहे हैं। संसदीय प्रणाली में इस प्रकार के मानदंड तय कर पाना मुश्किल होता है। हालाँकि भारत में हाल के दिनों में हुए चुनावों में यह देखा गया है कि राष्ट्रपति प्रणाली की भांति ही चुनाव अभियान के चेहरे के रूप में किसी नेता को सामने लाया जा रहा है।
- उपर्युक्त कारणों के चलते ही यह विचार व्यक्त किया जाता है कि भारत को राष्ट्रपति प्रणाली अपना लेनी चाहिए। तथापि निम्नलिखित तर्क इसके विपरीत जाते हैं:
    - यह वर्तमान संवैधानिक योजना के अंतर्गत कठिन है क्योंकि इससे 'मूलभूत संरचना' के सिद्धांत का उल्लंघन होगा।
    - ऐसे देश में जहां विविधता बहुत अधिक है वहाँ किसी एक व्यक्ति के हाथ में सत्ता और प्राधिकार का केंद्रीकरण लोकतंत्र के लिए खतरनाक हो सकता है।
    - भारत में संसदीय प्रणाली का लगभग 70 वर्षों से प्रयोग और परीक्षण किया गया है। इसलिए इसे प्रतिस्थापित करने की बजाय इसकी प्रक्रियाओं में सुधार लाने और चुनावी प्रक्रिया साफ-सुथरी बनाने पर बल दिया जाना चाहिए।

3.संसद/ राज्य विधायिका एवं कार्यपालिका के कार्य

(FUNCTIONING OF PARLIAMENT/STATE LEGISLATURE AND EXECUTIVE)

3.1. संसदीय कार्यवाही से संबंधित मुद्दे

(Issues in Parliamentary Functioning)

3.1.1. दल बदल विरोधी क़ानून

(Anti Defection Law)

सुर्ख़ियों में क्यों?

पिछले कुछ वर्षों में यह प्रवृति देखने में आयी है कि विधायक अपने सदन की सदस्यता गंवाए बिना सत्तारूढ़ दल की सदस्यता ग्रहण कर रहे हैं जिससे भारत में इस क़ानून की व्यावहारिकता पर प्रश्न उठने लगे है।

दल बदल विरोधी कानून क्या है?

- दल बदल विरोधी क़ानून 1985 में संसद द्वारा पारित किया गया था।
- 52वें संविधान संशोधन के द्वारा 10वीं अनुसूची जोड़ी गयी जिसके तहत दल बदल के आधार पर सदस्यों को अयोग्य ठहराने की व्यवस्था का प्रावधान किया गया। यदि कोई सांसद या विधायक स्वैच्छिक रूप से त्यागपत्र देता है या पार्टी नेतृत्व के निर्देशों के खिलाफ (पार्टी व्हिप के खिलाफ) मतदान करता है तो उसे अयोग्य घोषित कर दिया जायेगा।
- यदि कोई सांसद या विधायक अपनी पार्टी से स्वेच्छापूर्वक सदस्यता त्याग दे अथवा सदन में अपने दल के निर्देशों के विपरीत मत देता है (पार्टी व्हिप के विपरीत) तब वह सदस्यता के लिए अयोग्य माना जाएगा। यदि कोई निर्दलीय सदस्य किसी राजनीतिक दल में शामिल होता है तो वह अयोग्य घोषित किया जाएगा।
- कोई मनोनीत सदस्य जो किसी राजनीतिक दल का सदस्य नहीं हो वह छह माह के भीतर किसी पार्टी में शामिल हो सकता है; इस अवधि के बाद; वे किसी पार्टी के सदस्य या निर्दलीय सदस्य के रूप में माने जायेंगे।
- इस कानून के कुछ अपवाद भी है।
- कोई सदस्य अध्यक्ष या सभापती पद हेतु निर्वाचित होने पर अपनी पार्टी से इस्तीफा दे सकता है और पदमुक्त होने पर फिर से सदस्यता ग्रहण कर सकता है।
- यदि किसी दल के दो-तिहाई विधायक अन्य दल में विलय हेतु सहमति देते हैं तो उस दल का विलय किया जा सकता है।
- इस कानून के तहत पहले दलों को विभाजन की अनुमति थी। लेकिन, अब इस प्रावधान को समाप्त कर दिया गया है।

मुद्दे

- किसी सदस्य की अयोग्यता से संबंधित मामले में अध्यक्ष के लिए कोई समय सीमा तय नहीं की गयी है जोकि इस क़ानून से बचाव का मुख्य रास्ता है।
- इस क़ानून के अनुसार पीठासीन अधिकारी का निर्णय अंतिम है और न्यायिक समीक्षा के अधीन नहीं है। बाद में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि पीठासीन अधिकारी द्वारा अंतिम निर्णय लिए जाने तक न्यायालय कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा। हालाँकि, अंतिम निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है।
- यद्यपि यहाँ (किहोतो होलोहन मामले, 1993 के तहत) न्यायिक समीक्षा का प्रावधान है, फिर भी दल बदल क़ानून में एक स्पष्ट भूमिका के न होने का कारण न्यायपालिका निर्णय-पूर्व अवस्था में असहाय है।

समाधान

- पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए पूरी प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से परिभाषित करने और प्रक्रिया के प्रत्येक चरण के लिए एक निश्चित और उचित समय सीमा निर्धारित करने की जरुरत है।
- सदस्यों की अयोग्यता से संबंधित प्रश्न को सुलझाने की शक्ति अध्यक्ष से लेकर किसी अन्य संवैधानिक निकाय जैसे भारत के निर्वाचन आयोग को सौंपी जा सकती है।
- सर्वोच्च न्यायलय ने 1992 के **किहोतो होलोन** मामले में यह आदेश दिया कि पार्टी को केवल सरकार की स्थिरता जैसे महत्वपूर्ण स्थिति में ही मत हेतु निर्देश जारी करना चाहिए।
- कानून में संशोधन की आवश्यकता है ताकि यह प्रतिनिधिमूलक लोकतंत्र के साथ समन्वय रख सके और पार्टी नेतृत्व के निर्देशों का अंधानुकरण करने की परंपरा विकसित न हो। इससे विधायकों के असहमति के अधिकार और स्वतंत्र सोच को प्रोत्साहन मिलेगा जैसा कि अमेरिका, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया आदि जैसे विश्व के अन्य लोकतांत्रिक देशों मे प्रावधान है।

3.1.2. संसदीय समितियां

(Parliamentary Committees)

सुर्ख़ियों में क्यों?

- 16वीं लोकसभा के गठन के बाद से संसदीय समितियों द्वारा अब तक केवल 29% विधेयकों की जांच की गई है, जबकि 14वीं व 15वीं लोकसभा द्वारा इसी अवधि में क्रमश: 60% और 70% विधेयकों की जांच की गई थी।
- इससे संसदीय समितियों के घटते महत्व के सम्बन्ध में चिंता उत्पन्न होती है। साथ ही यह चिंता भी रहती है कि विभिन्न विधेयकों के पारित होने से पहले उचित विचार-विमर्श किया जा रहा है या नहीं।

संसदीय समितियों का महत्व

- संसदीय समितियां दो प्रकार की होती हैं: **स्थायी और तदर्थ समितियां**। स्थायी समितियां, विशेषीकृत कार्य संपन्न करती है, जबकि तदर्थ समितियों का गठन विशिष्ट कार्य करने हेतु किया जाता है तथा कार्य संपन्न हो जाने पर वे अस्तित्व में नहीं रहती हैं।
- संसदीय समितियां प्रस्तावित मुद्दों एवं विधेयकों की जांच करती हैं ताकि राष्ट्रीय महत्व के विषयों पर निर्णय करने से पहले संसद भलीभांति अवगत हो सके।
- यह सरकारी नीतियों का परीक्षण करके संसद की क्षमता को बढाता है और जवाबदेही भी सुनिश्चित करता है।
- ये समितियां विधेयक के संबंध में अनुशंसाएं और संशोधन कर सकती हैं। लेकिन ये अनुशंसाएं और संशोधन संसद पर बाध्यकारी नहीं होते हैं।
- पूर्व में हमने देखा है कि समितियों द्वारा की गई जांच ने कई विधेयकों से संबंधित महत्वपूर्ण मुद्दों को सुलझाने में मदद की है। उदाहरण के लिए 2013 से राज्य सभा में भ्रष्टाचार रोकथाम (संशोधन) विधेयक लंबित है। इस विधेयक की दो संसदीय समितियों द्वारा जांच की गई है और कई बार पुनर्निरीक्षण भी हुआ है। इससे विधेयक के कई महत्वपूर्ण मुद्दों के समाधान की राह आसान हुई है।

आगे की राह:

- प्रत्येक विधेयक को पारित करने से पहले विस्तृत और उचित विचार-विमर्श किया जाना चाहिए। कार्यों की अधिकता और संसद में सीमित समय के कारण सांसद सदन में व्यापक रूप से विधेयकों का परीक्षण नहीं कर पाते हैं। समय के अभाव की स्थिति में, संसदीय समिति द्वारा विधेयकों की जांच की जानी चाहिए।
- वैकल्पिक रूप से, भारत ब्रिटिश मॉडल भी अपना सकता है जहां प्रत्येक विधेयक की समिति द्वारा जांच की जाती है। इसकी अनुशंसा NCRWC द्वारा भी की गई थी।

3.1.2.1. लोक लेखा समिति

(Public Accounts Committee)

सुर्ख़ियों में क्यों?

- हाल ही में RBI के गवर्नर उर्जित पटेल विमुद्रीकरण के प्रभावों की जानकारी देने हेतु लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee:PAC) के समक्ष प्रस्तुत हुए।
- इस दौरान एक विवाद यह भी सामने आया कि क्या PAC प्रधानमंत्री को समन भेज सकती है।

समिति के प्राथमिक कार्य

- केंद्र सरकार के विनियोग खातों एवं वित्त खातों की जाँच और लोकसभा के समक्ष रखे गए अन्य खातों की जाँच।
- विनियोग खातों और इस पर CAG की रिपोर्ट की जाँच में समिति को स्वयं को इस बात के लिए पुष्ट करना होता है कि:
  - जिस राशि का व्यय किया गया है वह उसी सेवा या प्रयोजन के लिए किया गया है जिसके लिए वह उपलब्ध या भारित थी;
  - व्यय प्राधिकार के अनुसार किया गया है, और
  - प्रत्येक पुनर्विनियोग सक्षम प्राधिकारी द्वारा बनाए गये नियमों के तहत इस संबंध में किए गए प्रावधानों के अनुसार किया गया है।
- विभिन्न स्वायत्त और अर्द्ध स्वायत्त निकायों के लेखाओं की जाँच करना, जिनकी लेखा परीक्षा CAG द्वारा की जाती है।
- यह वास्तविक स्वीकृत राशि की तुलना में हुए अधिक या कम व्यय के औचित्य का निर्धारण करती है।

VISION IAS

- हालांकि, समिति के कार्यों का विस्तार व्यय की औपचारिकता से आगे देश की अर्थव्यवस्था हेतु अपने विवेक एवं विश्वसनीयता के संप्रयोग तक है, और इस प्रकार समिति घाटे, अनावश्यक व्यय और वित्तीय अनियमितताओं से जुड़े मामलों की जांच करती है।
- समिति कम आकलन, कर चोरी, शुल्कों का आरोपण न किया जाना, गलत वर्गीकरण आदि से सम्बंधित मामलों की जाँच करती है, कराधान कानूनों और प्रक्रियाओं में खामियों की पहचान करती है और राजस्व के रिसाव (लीकेज) की जांच करने के लिए अनुशंसाएँ करती है।

मुद्दे

- गोपनीयता: समिति की बैठकें बंद कमरे में होती हैं। जबकि इसके विपरीत, USA में समितियों के सम्मुख रखे जाने वाले विवरणों का सीधा प्रसारण होता है और ब्रिटेन में, समिति की बैठकें जनता के लिए खुली रहती हैं।
- समिति के सदस्यों में लेखांकन और प्रशासनिक सिद्धांतों की पेचीदगियों से निपटने के लिए आवश्यक तकनीकी विशेषज्ञता की कमी होती है।
- समिति के कार्य प्रकृति में पोस्टमार्टम के समान हैं तथा नुकसान को रोकने में प्रभावी नहीं है।
- जहाँ अन्य विभागों से संबंधित स्थायी समितियां कुछ सदस्यों की असहमतियों के साथ प्रतिवेदनों को स्वीकार कर सकती हैं, वहीं PAC को सर्वसम्मति से सभी प्रतिवेदनों को ग्रहण करना होता है। यह PAC के सन्दर्भ में अद्वितीय है, और यह इसकी तटस्थता बनाए रखने में मदद करता है।
- इसके पास जांच का स्वत: संज्ञान लेने का अधिकार नहीं है।
- कार्यवाहियों का राजनीतिकरण:
  - 2G घोटाले जैसे कुछ बड़े सार्वजनिक हितों वाले मुद्दों में यह दिखाई दिया कि सदस्यों ने समिति की बैठकों में अपनी पार्टी का पक्ष लेना शुरू कर दिया।
  - यहां तक कि संप्रग (UPA) सरकार के दौरान, PAC अध्यक्ष मुरली मनोहर जोशी के 2G घोटाले के संबंध में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को बुलाने के निर्णय पर व्यापक पैमाने पर विवाद आरम्भ हो गया था।

आगे की राह

- एक निर्धारित समय सीमा के भीतर CAG की जाँच रिपोर्ट को संसद में प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
- सरकारी विभागों के लिए कार्रवाई रिपोर्ट प्रस्तुत करने हेतु एक समय सीमा तय की जानी चाहिए।
- PAC के पास जांच को स्वत: संज्ञान में लेने की शक्तियां होनी चाहिए।
- लोकसभा या राज्यसभा सचिवालयों के माध्यम से उन्हें पर्याप्त तकनीकी सहायता उपलब्ध कराई जानी चाहिए।
- साक्षी की गवाही को या तो प्रसारित करके या प्रेस को अनुमति देकर सार्वजनिक किया जाना चाहिए या गवाही की प्रतिलिपि बनाकर सार्वजनिक करना चाहिए।
- PAC की बैठक के कार्य-विवरण को सार्वजनिक किया जाना चाहिए।
- आम जनता को समितियों की कार्यवाही के साक्ष्य देखने की अनुमति दी जानी चाहिए।

3.1.3. संसद में सुधार: दक्षता बढ़ाना

(Reforms in Parliament: Increasing Efficiency)

भारतीय संसद से संबंधित मुद्दे:

- **बैठकों की कम संख्या:** 1950 के दशक में संसदीय बैठकों की संख्या एक वर्ष में लगभग 140 दिन थी जो पिछले पांच वर्षों में घटकर प्रतिवर्ष औसतन 65 दिन हो गयी है।
- **अनुशासन और शिष्टाचार:** रुकावट और व्यवधान के कारण कभी-कभी सदन की कार्यवाही को स्थगित करना पड़ता है। इससे न केवल सदन के समय की बर्बादी होती है, बल्कि संसद के महत्वपूर्ण उद्देश्य भी प्रभावित होते हैं। यह प्रवृत्ति अब पहले से अधिक देखी जा रही है।
- **गुणवत्ताविहीन संसदीय बहस :** पूर्व में संसदीय बहस, राष्ट्रीय और महत्वपूर्ण मुद्दों पर केंद्रित हुआ करती थी। अब बहस स्थानीय समस्याओं के बारे में अधिक होती हैं एवं अक्सर संकीर्ण दृष्टिकोण से देखी जाती है।
- **महिलाओं की निम्न भागीदारी:** लोकसभा और राज्यसभा में अभी तक महिला सांसदों की भागीदारी 12% से अधिक नहीं है।

VISION IAS

- विधेयक को बिना चर्चा या न्यूनतम चर्चा और ध्वनि मत द्वारा पारित किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, 2008 में 16 विधेयकों को 20 मिनट से भी कम समय में बहस कर पारित कर दिया गया था। साथ ही निजी सदस्यों के द्वारा प्रस्तुत विधेयकों के पारित न होने की प्रवृत्ति में भी सुधार नहीं आया है। अब तक, केवल 14 निजी विधेयक पारित किए गए हैं।

संसद की भूमिका को प्रभावित करने वाले कारक:

- 1985 में दल-बदल कानून पारित होने के बाद से सांसदों के लिए संसद में जाने से पहले अपने कार्यों की तैयारी करना कम महत्त्वपूर्ण हो गया है। इसका कारण यह है कि मतदान की स्थिति में उनके लिए पार्टी व्हिप का पालन करना अनिवार्य हो गया है।
- सांसदों के पास रिसर्च स्टाफ नहीं है। संसद का पुस्तकालय भी अख़बारों की कतरनों के सिवाय कोई अनुसन्धान सामग्री सुलभ करवाने में समर्थ नहीं होता।
- गठबंधन की राजनीति के कारण विभिन्न दलों के मध्य संबंध अधिक जटिल हो गए हैं।
- मीडिया द्वारा संसद के कार्यों का सीधा प्रसारण होने से सांसदों के समूहों में दिखावटी प्रवृत्ति बढ़ी हैं। उनके संसदीय आचरण पर सुर्ख़ियों में बने रहने की उनकी आकांक्षा हावी हो जाती है।
- हालाँकि कुछ सकारात्मक परिवर्तन भी देखने को मिले हैं। 1993 में स्थायी समितियों के गठन से कानूनों की जांच करने और कार्यपालिका के कामकाज की देखरेख करने के सम्बंध में संसद की क्षमता में वृद्धि हुई है।

संसद के खराब कामकाज का प्रभाव

- **सरकार की जवाबदेही का अभाव:** यदि संसद ठीक से काम नहीं करती है, तो सरकार अपने कार्यों के लिए जवाबदेह नहीं रह जाती।
- **निम्न उत्पादकता:** 2016 के शीतकालीन सत्र में लोकसभा की उत्पादकता केवल 14% तथा राज्य सभा की उत्पादकता केवल 20% थी।
- संसदीय सत्र के संचालन में सार्वजनिक खर्च की उच्च लागत के कारण, इनके ठीक से न चलने से करदाता के धन की बर्बादी होती है। परन्तु साथ ही इसकी सामाजिक लागत भी बहुत अधिक है। उदाहरण के लिए, GST चार साल पहले पारित हो सकता था। अगर हम यह स्वीकारते हैं कि GST लागू होने से भारत के सकल घरेलू उत्पाद में 1% की वृद्धि होगी, तो हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि पिछले चार वर्षों में हम सकल घरेलू उत्पाद का 4% लाभ खो चुके हैं।
- नीति निर्माण में देरी से 'असंवैधानिक निकायों द्वारा विधायी अंतराल को भरने' को बढ़ावा मिलता है।
- लोकतांत्रिक प्रक्रिया में विश्वास कम होने के कारण राष्ट्रीय नीति बनाने वाली एक संस्था के रूप में संसद की प्रासंगिकता में कमी आ जाती है।

सुझाव

- न्यूनतम कार्य दिवस: संविधान समीक्षा हेतु गठित राष्ट्रीय आयोग ने सिफारिश की है कि राज्यसभा और लोक सभा की बैठकों के लिए न्यूनतम दिनों की अवधि क्रमशः 100 और 120 दिन तय की जानी चाहिए। ओडिशा राज्य विधानसभा की बैठक के लिए न्यूनतम 60 दिन अनिवार्य करने वाला पहला राज्य बना है।
- यदि अवरोधों के कारण समय ख़राब हो जाता है तो उसकी क्षतिपूर्ति उसी दिन बैठक की समयावधि बढ़ाकर करनी चाहिए।
- महिला आरक्षण विधेयक (108 वां संशोधन) को पारित कर महिलाओं के लिए संसद के दोनों सदनों और राज्य विधानसभाओं में 33% आरक्षण सुनिश्चित करना चाहिए।
- विधायी प्रक्रिया को व्यवस्थित करना होगा। संसदीय समितियां इस प्रक्रिया में संस्थागत महत्व ग्रहण कर सकती हैं। ये समितियाँ विधायी इंजीनियरिंग के साथ-साथ आम जनता के हित में मुद्दों को उठाने और उनका पक्ष प्रस्तुत करने के लिए अवसर प्रदान करती हैं।
- संविधान समिति को संवैधानिक सुधार प्रस्ताव के वास्तविक मसौदे को तैयार करने से पहले प्राथमिक जांच करनी चाहिए।
- दल-बदल विरोधी कानून को पुनर्गठित किये जाने की आवश्यकता है। इसे केवल असाधारण परिस्थितियों में उपयोग किया जाना चाहिए, जिससे सांसद स्व-अभिव्यक्ति के अनुसार नियन्त्रण मुक्त होकर निर्णय ले सकें। उदाहरण के लिए, UK में, एक स्वतंत्र वोट की अवधारणा है, जिसके अनुसार सांसद अपनी इच्छा से किसी विशेष विधायी विषय पर स्वतंत्र वोट दे सकता है।

VISION IAS

- संसद की बौद्धिक संपदा में निवेश आवश्यक है। साथ ही सांसदों की सहायता करने वाले रिसर्च स्टाफ के लिए LARRDIS (पार्लियामेंट लाइब्रेरी एंड रिफरेन्स, रिसर्च, डॉक्यूमेंटेशन एंड इनफार्मेशन सर्विस) को अतिरिक्त बजटीय सहायता प्रदान की जानी चाहिए।
- बजट जांच प्रक्रिया में सुधार: अमेरिकी संसदीय बजट कार्यालय के समान ही भारत को भी एक संसदीय बजट कार्यालय की जरूरत है। यह एक स्वतंत्र संस्था होगी और व्यय या राजस्व जुटाने की आवश्यकताओं के साथ किसी भी अधिनियम का तकनीकी और उद्देश्यपूर्ण विश्लेषण करने के लिए समर्पित होगी।

निष्कर्ष

संसद नीति निर्माण के लिए होनी चाहिए, न कि राजनीति के लिए। भारतीय संसद परिवर्तनों से सृजित नई परिस्थितियों के अनुरूप नहीं चल रही है। इसलिए हमारी संसद को अधिक प्रतिनिधिमूलक एवं कुशल बनाने की आवश्यकता है।

3.1.4. विधायिका के विशेषाधिकार

(Privilege of Legislators)

सुर्ख़ियों में क्यों

हाल ही में कर्नाटक विधानसभा के अध्यक्ष ने अपनी "विशेषाधिकार समितियों" की सिफारिशों के आधार पर दो पत्रकारों को एक वर्ष के कारावास का आदेश दिया है। इससे पूर्व 2003 में तमिलनाडु विधानसभा अध्यक्ष ने AIADMK सरकार के सम्बन्ध में आलोचनात्मक लेखों के प्रकाशन के लिए पांच पत्रकारों की गिरफ्तारी का निर्देश दिया था।

विशेषाधिकार क्या हैं?

संविधान द्वारा संसद / राज्य विधानसभाओं के दोनों सदनों, उनकी समितियों तथा उनके सदस्यों को कुछ विशेष अधिकार, उन्मुक्तियाँ तथा सुरक्षा प्रदान की गई हैं।

इन्हें दो व्यापक श्रेणियों में बाँटा गया है:

1. **सामूहिक विशेषाधिकार** का प्रयोग प्रत्येक सदन द्वारा सामूहिक रूप से किया जाता है। इनमें, रिपोर्ट आदि प्रकाशित करने का अधिकार, बाहरी व्यक्तियों को सदन की कार्यवाही से बाहर करना, विशेषाधिकारों के उल्लंघन के लिए सदस्यों/बाहरी व्यक्तियों को दंडित करना इत्यादि शामिल हैं।
2. **व्यक्तिगत विशेषाधिकार** सदस्यों द्वारा व्यक्तिगत रूप से प्रयोग किये जाते हैं। उदाहरणार्थ सदन में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, सत्र के दौरान न्यायिक जाँच से छूट, सत्र से 40 दिन पहले से 40 दिन बाद तक गिरफ्तारी से छूट इत्यादि।

विशेषाधिकारों के स्रोत: मूलतः इसे ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स से लिया गया है। सभी विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध करने के लिए कोई कानून नहीं है। ये पांच विभिन्न स्रोतों पर आधारित हैं: संवैधानिक प्रावधान, संसद के विभिन्न कानून, दोनों सदनों के नियम, संसदीय सम्मेलन और न्यायिक निर्वचन।

विशेषाधिकारों का उल्लंघन: विशेषाधिकारों के उल्लंघन और उसके लिए सजा के निर्धारण हेतु स्पष्ट नियमों का अभाव है। कर्नाटक विशेषाधिकार पैनल के अनुसार, कोई भी ऐसी अभिव्यक्ति अथवा कोई भी ऐसा निन्दा-लेख छापना या प्रकाशित करना विशेषाधिकार उल्लंघन के अंतर्गत आ सकता है, जो सदन, इसकी समितियों या इसके सदस्यों के चरित्र या संसद सदस्य के नाते उनके आचरण के सन्दर्भ में अपमानजनक है।

संवैधानिक स्थिति: संविधान के अनुच्छेद 105 (संसद के मामले में) और 194 (राज्य विधायिका के मामले में) के तहत विशेषाधिकारों को शामिल किया गया है।

विशेषाधिकार समिति:

- यह एक स्थायी समिति है जिसका संसद / राज्य विधानसभा के प्रत्येक सदन में गठन होता है। लोकसभा की विशेषाधिकार समिति में 15 जबकि राज्य सभा की समिति में 10 सदस्य होते हैं जिनको क्रमशः अध्यक्ष एवं सभापति द्वारा नियुक्त किया जाता है।
- इसका प्रमुख कार्य, सदन अथवा सदनाध्यक्ष द्वारा समिति को सौंपे गये सम्पूर्ण सदन या किसी सदस्य के विशेषाधिकारों के हनन से सम्बंधित प्रश्नों की जाँच करना है। यह विभिन्न तथ्यों के सन्दर्भ में विषय की जाँच करके अपनी अनुशंसाएँ सदन को सौंपती है।

VISION IAS

महत्व

- यह सांसदों और विधायकों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की रक्षा करते हैं और इन सदनों में होने वाले मामलों पर मुकदमेबाजी के खिलाफ सुरक्षा प्रदान करते हैं।
- इन विशेषाधिकारों के बिना सदन अपने अधिकार, गरिमा और सम्मान को बनाए रखने में असमर्थ होगा। साथ ही इनके बिना यह अपने सदस्यों को कर्तव्यों के निर्वहन में किसी अवरोध से सुरक्षा प्रदान करने में भी सक्षम नहीं होगा।

आलोचना

- कभी-कभी इसका प्रयोग मीडिया द्वारा की गयी सांसदों/विधायकों की आलोचना का विरोध करने तथा कानूनी कार्यवाही के विकल्प के रूप में किया जाता है।
- विशेषाधिकार उल्लंघन के कानून राजनीतिज्ञों को उनके स्वयं के मामलों में ही न्याय करने का अधिकार प्रदान करते हैं। इससे हितों के टकराव तथा अभियुक्त को निष्पक्ष सुनवाई की आधारभूत गारंटी से वंचित करने की स्थिति बन जाती है।

आगे की राह

वस्तुतः एक कानून आवश्यक है जो विधायी विशेषाधिकारों को संहिताबद्ध, विशेषाधिकार हनन की स्थिति में पैनल के कार्यों की सीमाओं का निर्धारण तथा इस हेतु एक सुनिश्चित प्रक्रिया का निर्धारण कर सके। विधायिका को अपनी शक्ति का उपयोग अवमानना या विशेषाधिकार के उल्लंघन के मामले में ही करना चाहिए ताकि सदन की स्वतंत्रता की रक्षा भी हो सके और आलोचकों की स्वतंत्रता को भी कम नहीं किया जाए।

3.2. राज्य सभा से सम्बंधित मामलें

(Issues Related To Rajya Sabha)

3.2.1. राज्य सभा की प्रासंगिकता

(Relevance of Rajya Sabha)

सुर्खियों में क्यों?

पिछले वर्ष संपन्न हुए राज्यसभा चुनाव राजनीतिक दलों द्वारा कथित खरीद-फरोख्त को लेकर चर्चा में रहे। इस दौरान राजनेताओं द्वारा अपने समकक्षों पर खुल कर भ्रष्टाचार के आरोप लगाये गए।

कार्यपद्धति और संरचना से सम्बंधित मुद्दे

- 2003 में जन प्रतिनिधित्व अधिनियम (RPA) में संशोधन के माध्यम से राज्य सभा का चुनाव लड़ने वाले व्यक्ति के लिए सम्बंधित राज्य का मूल निवासी होने की आवश्यकता समाप्त कर दी गई है। फलस्वरूप राजनीतिक दलों द्वारा अपने अलोकप्रिय या पराजित उम्मीदवारों को राज्यसभा के माध्यम से संसद तक पहुँचाने की प्रवृत्ति निरंतर बढ़ती जा रही है। इस प्रकार अब राज्यसभा वास्तविक अर्थों में राज्यों का प्रतिनिधित्व नहीं करती है।
- कुछ बड़े राज्यों की राज्य सभा सीटों पर नियंत्रण हो जाना अपेक्षाकृत कम प्रतिनिधित्व वाले अनेक छोटे राज्यों की आवाज़ दबाने के लिए पर्याप्त है।
- वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इस व्यवस्था की एक और महत्वपूर्ण आलोचना यह है कि राज्य सभा में सीटों का आवंटन राज्य की जनसंख्या के आधार पर किया जाता है। जनसंख्या के आधार पर सीटों का इस तरह का आवंटन राज्यसभा की संघीय भूमिका के लिए उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है। ध्यान देने योग्य है कि राज्यसभा की परिकल्पना संघीय भूमिका हेतु ही की गयी है।
- विभिन्न राजनीतिक दल धन एकत्र करने के लिए राज्यसभा की सीटों का उपयोग कर रहे हैं। बड़ी संख्या में उद्योगपति राज्य सभा में राज्यों के प्रतिनिधि के रूप में मौजूद हैं (जबकि उनका प्रायः उक्त राज्य से दूर-दूर तक कोई सम्बन्ध नहीं होता है)। मतदाताओं द्वारा अस्वीकृत भ्रष्ट और आपराधिक प्रवृत्ति वाले राजनेता अपने संबंधों और धनबल के उपयोग से राज्यसभा में अपनी जगह बना लेते हैं।

राज्य सभा का महत्व

- गणतांत्रिक सरकार में नियंत्रण और संतुलन की आवश्यकता होती है। राष्ट्रीय विधायिका में दो सदन बनाने के पीछे मुख्य रूप से यही तर्क विद्यमान है। राज्यसभा को इस बात के लिए एक अतिरिक्त सावधानी माना जा सकता है कि बहुमत वाले गुट शक्ति का दुरूपयोग न कर सकें।
- इसके साथ ही विशाल भू-भाग वाले और विविधता से भरे राष्ट्र द्विसदनीय व्यवस्था पसंद करते हैं। ऐसा संघीय स्तर पर विविध हितों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है। क्षेत्रीय दलों के उत्थान के कारण राज्यसभा के महत्व में एक नया आयाम जुड़ गया है।

- राज्यसभा शांतिपूर्ण और ज्ञानपूर्ण विचार-विमर्श का मंच है।
- यहाँ राजनीतिक विवशता अधिक नहीं होती क्योंकि चुनाव प्रत्यक्ष पद्धति पर आधारित नहीं होता है।
- राज्यसभा का चरित्र स्थायी होने के कारण यह स्थिरता के एक माध्यम के रूप में कार्य करती है।
- यह वरिष्ठ राजनेताओं और राजनीतिज्ञों के लिए राजव्यवस्था में योगदान दे पाना संभव बनाती है। इसके साथ ही मनोनयन के माध्यम से बौद्धिक जनों/विशेषज्ञों की सेवाएँ भी प्राप्त हो जाती हैं।

आगे की राह

- चूँकि लोकसभा में सीटें राज्यों की जनसंख्या के आधार पर ही वितरित की गई हैं, इसलिए इसी आधार पर राज्यसभा में भी सीटों के वितरण से अधिक लाभ नहीं हैं।
- छोटे राज्यों को राजनीतिक मुख्यधारा में लाने के लिए राज्य सभा में उनका समान प्रतिनिधित्व होना आवश्यक है। संयुक्त राज्य अमेरिका में सभी राज्यों के लिए समान प्रतिनिधित्व की ऐसी योजना का पहले से ही अनुसरण किया जा रहा है। पुंछी आयोग ने भी इसी प्रकार के कदम की अनुशंसा की है।
- धनबल के दुरुपयोग से निपटने के लिए चुनाव प्राधिकारियों द्वारा निगरानी बढ़ाना और इस शर्त को पुनः लागू करना आवश्यक है कि प्रत्याशी चुनाव वाले राज्य का मूल निवासी हो।

3.2.2. राज्यसभा में संयुक्त समूह

(United Group in Rajya sabha)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में भारत के उप-राष्ट्रपति ने 22 सांसदों के एक समूह को औपचारिक रूप से राज्यसभा में संयुक्त समूह के रूप में मान्यता प्रदान की। इनमें चार से कम सांसदों वाली पार्टियों से सम्बंधित और कुछ निर्दलीय सांसद शामिल हैं।

पृष्ठभूमि

- भारतीय संसद के इतिहास में यह तीसरी बार है जब ऐसे किसी समूह को मान्यता दी गयी है।
- 1983 में, पहली बार राज्यसभा के तत्कालीन सभापति द्वारा इस तरह के समेकित समूह को मान्यता दी गयी थी। इसे सदस्यों का संयुक्त संघ (United Associations of Members) नाम दिया गया था।
- 1990 में, राज्य सभा के तत्कालीन सभापति ने सांसदों के संगठित समूह को मान्यता प्रदान कर इसका संयुक्त समूह (United Group) के रूप में पुनर्नामकरण किया था।

निर्णय के निहितार्थ

- यह संयुक्त समूह कांग्रेस और भाजपा के बाद राज्यसभा में सांसदों का तीसरा सबसे बड़ा समूह होगा।
- इस समूह को कार्य मंत्रणा समिति (Business Advisory Committee (BAC)) में स्थान प्राप्त होगा। यह समिति समय आवंटन का निर्णय करती है। पार्टियों के लिए किसी मुद्दे पर बहस या बात करने के लिए आवंटित समय सदन में उनकी संख्या पर निर्भर करता है। अभी तक अपनी कम संख्या के चलते इस समूह के सदस्यों को अपनी बात रखने के लिए महज़ तीन मिनट का समय मिल पाता था। अतः इस तरह के समूह के निर्माण से राज्यसभा में विभिन्न मुद्दों पर बेहतर वाद-विवाद और सभी सदस्यों के विचारों का समावेशन संभव हो सकेगा।

3.3 कार्यपालिका से सम्बंधित मामलें

(Issues Related To Executive)

3.3.1. अध्यादेश का मार्ग

(Ordinance Route)

सुर्ख़ियों में क्यों?

- हाल ही में, कृष्ण कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य मामले में उच्चतम न्यायालय की सात न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने निर्णय दिया कि अध्यादेश को विधायिका के समक्ष प्रस्तुत न करना शक्ति का दुरुपयोग और संविधान के साथ धोखाधड़ी है।

बिहार सरकार ने 1989 के एक अध्यादेश को लगातार सात बार पुनर्प्रख्यापित किया जिसके द्वारा सरकार ने इस विधेयक को एक बार भी राज्य विधानसभा में प्रस्तुत किए बिना बिहार में 429 से अधिक संस्कृत विद्यालयों का अधिग्रहण किया था।

संविधान क्या कहता है?

- अनुच्छेद 123 और अनुच्छेद 213 क्रमश: राष्ट्रपति और राज्यपाल को अध्यादेश प्रख्यापित करने की शक्ति प्रदान करता है।
- संविधान के तहत, एक अध्यादेश केवल तभी प्रख्यापित किया जा सकता है जब
- विधानमंडल या विधायिका के किसी भी सदन का सत्र नहीं चल रहा हो।
- ऐसी परिस्थितियाँ विद्यमान हैं जिनके कारण तुरंत कार्रवाई की आवश्यकता है।
- उच्चतम न्यायालय ने 1986 में डी.सी वाधवा मामले में पहले ही निर्णय दिया था कि अध्यादेशों को बारम्बार पुनर्प्रख्यापित करना असंवैधानिक है।

बार बार अध्यादेश के मार्ग का सहारा क्यों?

- विशेष मुद्दों पर विधायिका का सामना करने की अनिच्छा।
- उच्च सदन में बहुमत का अभाव।
- विपक्षी दलों द्वारा बार बार तथा जानबूझकर व्यवधान डालना।

अध्यादेश के खिलाफ तर्क

- अध्यादेश मार्ग शक्ति के पृथक्करण सिद्धांत के खिलाफ है, क्योंकि कानून बनाने की शक्ति विधायिका के क्षेत्र में आती है।
- यह कार्यपालिका के हाथों में मनमानी शक्ति प्रदान करता है।
- इसके तहत कानून बिना किसी भी बहस और चर्चा के घोषित किया जाता है।

निर्णय के निहितार्थ

- जहाँ अध्यादेश आवश्यक हो वहां इसे प्रख्यापित करने की राष्ट्रपति या राज्यपाल की संतुष्टि के मुद्दे पर न्यायालय विवेचना कर सकता है।
- न्यायालय जांच कर सकता है कि क्या इसका कोई परोक्ष मकसद था। इस प्रकार यह न्यायिक समीक्षा की शक्ति का विस्तार है।
- यह किसी अध्यादेश को इसके अनुमोदन के लिए विधायिका में पेश किए जाने को अनिवार्य बनाता है।

आगे की राह

संविधान में शक्ति के पृथक्करण का सिद्धांत प्रदान किया गया है जहां कानून निर्माण विधायिका का कार्य है। कार्यपालिका को आत्म-संयम दिखाना चाहिए और अध्यादेश जारी करने की शक्ति का प्रयोग केवल संविधान की भावना के अंतर्गत करना चाहिए न कि विधायिका की जांच और बहस से बचने के लिए।

3.3.2. लाभ का पद

(Office of Profit)

सुर्ख़ियों में क्यों?

पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने हाल ही में हरियाणा के चार मुख्य संसदीय सचिवों (CPSes) की नियुक्तियों को रद्द कर दिया।

लाभ के पद की परिभाषा

'लाभ का पद' संविधान में परिभाषित नहीं है। लेकिन पिछले निर्णयों के आधार पर चुनाव आयोग ने लाभ के पद की व्याख्या निम्नलिखित 5 आधारों पर की है:

- क्या सरकार द्वारा नियुक्ति की गई है?
- क्या सरकार के पास पद धारक को हटाने या पदच्युत करने का अधिकार है?
- क्या सरकार द्वारा पारिश्रमिक का भुगतान किया जाता है?
- पद धारक के कार्य क्या हैं?
- क्या सरकार इन कार्यों के निष्पादन पर किसी भी प्रकार का नियंत्रण रखती है?

संसदीय सचिव कौन है?

- वेस्टिमन्स्टर प्रणाली में संसदीय सचिव संसद का एक सदस्य होता है जो अपने कार्यों द्वारा अपने से वरिष्ठ मंत्रियों की सहायता करता है। मूल रूप से इस पद का उपयोग भावी मंत्रियों के प्रशिक्षण के लिये किया जाता था।
- इस पद का सृजन समय-समय पर अनेक राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान आदि में किया गया है।
- हालाँकि उच्च न्यायालय में विभिन्न याचिकाओं द्वारा संसदीय सचिवों की नियुक्तियों को चुनौती दी गई है।

- जून 2015 में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने पश्चिम बंगाल में 24 संसदीय सचिवों की नियुक्ति को असंवैधानिक ठहराते हुए रद्द कर दिया था।
- इसी प्रकार के कदम बंबई उच्च न्यायालय, हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय, दिल्ली उच्च न्यायालय आदि द्वारा भी उठाए गए थे।

इस पद के साथ समस्या क्या है?

- संसदीय सचिव, मूल रूप से **कार्यपालिका और विधायिका के बीच शक्ति-पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन करता है।**
- सैद्धांतिक रूप से विधायिका सरकार को नियंत्रित करती है किन्तु वास्तविकता में प्रायः यह देखा गया है कि सरकार जब तक सदन में बहुमत में होती है तब तक वह विधायिका को नियंत्रित करती है। विधायकों को खुश करने एवं लाभ पहुँचाने के लिए उन्हें निगमों के अध्यक्ष के पद, विभिन्न मंत्रालयों के संसदीय सचिवों के पद तथा लाभ के अन्य पद प्रदान कर दिये जाते हैं ताकि वे सरकार से सहयोगात्मक रुख बनाये रखें।
- संसदीय सचिवों की नियुक्ति, शक्ति-पृथक्करण के सिद्धांत से संबंधित **दो महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रावधानों के विपरीत है:**
- **लाभ के पद की धारा:** संविधान के **अनुच्छेद 102(1)(क) और अनुच्छेद 191(1)(क)** के अधीन, किसी व्यक्ति को संसद या किसी विधानसभा/परिषद के सदस्य के रूप में अयोग्य घोषित किया जाएगा यदि वह केंद्रीय या किसी राज्य सरकार के तहत 'लाभ का पद' धारण करता है (ऐसा तब नहीं होगा यदि संसद या राज्य विधायिका क़ानून बनाकर उक्त पद को धारण करने वाले को अयोग्य घोषित न किए जाने का उपबंध कर दे)।
- इसके पीछे मूलभूत विचार विधायकों के विधायी कार्यों और उन्हें मिले पद के कर्तव्यों के बीच हितों के टकराव को टालना था।

मंत्रियों की शक्तियों की सीमाओं की धारा: संसदीय सचिव का पद संविधान के **अनुच्छेद 164 (1A)** से असंगत है। इसके अनुसार राज्य मंत्रिमंडल में मंत्रियों की संख्या राज्य विधानसभा के सदस्यों की कुल संख्या का अधिकतम 15 प्रतिशत होनी चाहिए। क्योंकि संसदीय सचिव भी राज्य मंत्री का पद होता है अतः इस पद के सृजन से इस सीमा का उल्लंघन हो सकता है।

पदों के समर्थन में तर्क

- संविधान विधायिका को लाभ के किसी भी पद को धारण करने वाले को छूट प्रदान करने हेतु कानून पारित करने की अनुमति प्रदान करता है। पहले भी राज्यों और संसद द्वारा ऐसा किया जा चुका है। यू.सी. रमण मामले में सुप्रीम कोर्ट ने इसे बरकरार रखा है।
- मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति/राज्यपाल द्वारा की जाती है। वे उन्हें पद और गोपनीयता की शपथ दिलाते हैं। इन संवैधानिक आवश्यकताओं को पूरा किए बिना किसी व्यक्ति को मंत्री नहीं माना जा सकता। अनुच्छेद 239AA(4) के तहत संसदीय सचिव मंत्री नहीं माने जाते हैं, क्योंकि उन्हें राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त नहीं किया जाता और उनके द्वारा उन्हें पद और गोपनीयता की शपथ भी नहीं दिलाई जाती।

इस संबंध में द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की संस्तुतियां: निम्नलिखित सिद्धांतों के आधार पर लाभ के पद को परिभाषित करने के लिए कानून में संशोधन किया जा सकता है:

- **पूर्णतया सलाहकारी निकायों** के उन सभी पदों को लाभ का **पद नहीं माना जाना चाहिए** जहाँ विधायक के अनुभव, अंतर्दृष्टि और विशेषज्ञता सरकारी नीतियों के लिए इनपुट हो सकती हैं।
- **कार्यकारी निर्णय** लेने, सार्वजनिक निधियों पर नियंत्रण करने, प्रत्यक्ष रूप से नीति निर्णय करने या व्यय की स्वीकृति प्रदान करने वाले कार्यालयों से संबंधित सभी पदों को लाभ के पद के रूप में **माना जाना चाहिए।**
- यदि एक सेवारत मंत्री किसी संगठन का सदस्य या प्रमुख हो और **सरकार के कामकाज के लिए मंत्रिपरिषद् एवं उस संगठन के बीच गहन समन्वय आवश्यक हो** तो उस पद को लाभ का पद नहीं माना जाना चाहिए।

भावी कदम

- अब भारत निर्वाचन आयोग को निर्णय करना है कि संसदीय सचिवों की नियुक्ति से संबंधित नियम व शर्तें 'लाभ के पद' का निर्माण करते हैं अथवा नहीं।
- राष्ट्रपति के निर्णय को किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती क्योंकि यह भारत के संविधान के तहत उसकी कार्यपालिका शक्ति है। सुप्रीम कोर्ट इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता है।
- हालाँकि, ECI द्वारा लिए गए किसी भी निर्णय को असंतुष्ट पार्टी द्वारा दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जा सकती है। इसका आशय यह है कि यदि निर्वाचन आयोग विधायकों को अयोग्य घोषित करने का निर्णय लेता है तो AAP (आप) न्यायालय जा सकती है।

VISION IAS

3.3.3. स्पॉइल्स सिस्टम

(Spoils System)

सुर्ख़ियों में क्यों ?

- हाल ही में तमिलनाडु के राज्यपाल द्वारा तमिलनाडु लोक सेवा आयोग में की गईं 11 नियुक्तियों पर मद्रास उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय ने रोक लगा दी है।

पृष्ठभूमि

- **उपेंद्र नारायण सिंह मामले (2009)** में, उच्चतम न्यायलय ने कहा कि लोक सेवा आयोग *स्पॉइल्स सिस्टम* का शिकार बन गया हैं।
- राजनीतिक व्यवस्था में बदलाव के साथ राज्यपालों की नियुक्ति और सेवानिवृत्ति भी संवैधानिक पदों के *स्पॉइल्स सिस्टम* की दिशा में बदलाव का संकेत है।

स्पॉइल्स सिस्टम

- इसे पैट्रानेज सिस्टम भी कहा जाता है।
- इसके तहत, एक विजयी राजनीतिक पार्टी, कार्यकर्ताओं और समर्थकों को सरकारी पदों पर नियुक्त करके या दूसरे तरह से पक्ष लेकर प्रतिफल देती है।

निहित मुद्दे:

- **रामशंकर रघुवंशी मामले (1983)** में, SC ने पाया कि पूर्व की राजनीतिक निष्ठा के आधार पर नियुक्ति संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन करती है।
- *स्पॉइल्स सिस्टम* नियुक्ति में हितों का संघर्ष पैदा करता है। इससे सार्वजनिक प्रशासन में पारदर्शिता और जवाबदेही की कमी हो सकती है।
- चूंकि यह योग्यता पर आधारित प्रणाली से संगत नहीं है, इसलिए यह प्रशासनिक दक्षता को नुकसान पहुंचा सकता है।

इस सिस्टम को हटाने के लिए उठाए गए कदम

- अनुच्छेद 320 के अंतर्गत लोक सेवा आयोगों की स्थापना, तथा इन्हें नागरिक सेवाओं के लिए मेधावी उम्मीदवारों के चयन के लिए आवश्यक सेवा नियमों और शर्तों को व्यवस्थित करने का अधिकार दिया है।
- केरल सरकार ने हाल ही में सरकारी नियुक्तियों में भाई-भतीजावाद को रोकने के लिए एक समर्पित कानून लाने का निर्णय लिया है।

क्या करना आवश्यक है

- द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग *स्पॉइल्स सिस्टम* से बचने के लिए प्रशासनिक भर्ती के लिए कुछ विशिष्ट सिद्धांतों को लागू करने की सिफारिश करता है। ये सिद्धांत हैं:
  - सभी सरकारी नौकरियों में भर्ती के लिए सुपरिभाषित गुणवत्ता-आधारित प्रक्रिया।
  - सभी पदों पर भर्ती के लिए व्यापक प्रचार और खुली प्रतियोगिता।
  - भर्ती प्रक्रिया में विवेकाधिकार का न्यूनतम प्रयोग।
  - मुख्य रूप से लिखित परीक्षा के आधार पर या मौजूदा बोर्ड या विश्वविद्यालय परीक्षा में प्रदर्शन के आधार पर चयन, साक्षात्कार को न्यूनतम महत्व दिया जाय।

इन सिद्धांतों को **सिविल सेवा विधेयक** में शामिल किया जा सकता है

- मुख्यमंत्री, न्यायाधीश, लोकायुक्त आदि द्वारा राज्य स्तर पर एक स्वतंत्र सिविल सेवा बोर्ड, जो भर्ती प्रक्रिया को पारदर्शी बनाने में मदद कर सकता है।

आगे की राह

- सरकार द्वारा, संस्थान को राजनीतिक हस्तक्षेप से स्वतंत्र बना कर इस *स्पॉइल्स सिस्टम* को रोकने की जरूरत है। इससे गुणवत्ता युक्त व्यवस्था पर बल देकर प्रशासनिक दक्षता में सुधार और प्रशासन को अधिक से अधिक लोगों तक पहुचने में मदद मिलेगी।

VISION IAS

3.3.4. अत्यधिक सरकारी मुकदमेबाजी

(Excessive Government Litigation)

सुर्ख़ियों में क्यों?

अक्टूबर में दिल्ली उच्च न्यायालय के स्वर्ण जयंती समारोह के दौरान प्रधानमंत्री ने अत्यधिक सरकारी मुकदमेबाजी की समस्या को उठाया।

पृष्ठभूमि

- भारतीय न्यायपालिका के समक्ष दायर मुकदमों में से लगभग आधे सरकारी मुक़दमे होते हैं।
- सरकारी कोष पर दवाब के अलावा, सरकारी मुकदमेबाजी न्यायिक बैकलॉग में भी योगदान करती है, इस प्रकार यह भारत में न्याय संवितरण (justice delivery) को प्रभावित करता है।
- 1970 से ही उच्चतम न्यायालय ने, एक के बाद एक आने वाली सरकारों के सरकारी मुकदमेबाजी से निपटाने के प्रति लापरवाह और यंत्रवत बने रहने की आलोचना की है।
- 1988 में भारत के विधि आयोग ने भी अपनी 126 वीं रिपोर्ट में इस समस्या का अध्ययन किया, और इस विषय पर अपने विचार रखे।
- सामान्य प्रकृति के होने के कारण तथा कार्यान्वयन के लिए अधिक गुंजाइश नहीं होने के कारण "राष्ट्रीय मुकदमेबाज़ी नीति (नेशनल लिटीगेशन पॉलिसी: NLP) 2010 विफल हो गई थी।
- 2015 में सरकार द्वारा इस दिशा में एक और प्रयास किया गया। यह प्रक्रिया अभी भी प्रगति पर है। वर्तमान में सरकार ने विधि आयोग को यह कार्य सौंपा है जिसकी अध्यक्षता SC के एक सेवानिवृत्त न्यायधीश करेंगे।

राष्ट्रीय मुकदमेबाजी नीति 2010 की विशेषताएं

- देश में सरकार और इसकी विभिन्न एजेंसियां न्यायालयों और ट्रिब्यूनलों में सबसे बड़ा अभियोजक (लगभग 46% मुकदमें) हैं। इस नीति का उद्देश्य सरकार को एक कुशल और जिम्मेदार अभियोजक में परिवर्तित करना है। नीति द्वारा **'कुशल अभियोजक'** और **'जिम्मेदार अभियोजक'** के अर्थ को परिभाषित किया गया है
- इसने सरकारी संस्थानों की अदालतों पर पूर्ण निर्भरता को उचित नहीं माना है।
- इसका उद्देश्य सरकारी मुकदमों को कम करना है और नेशनल लीगल मिशन के तहत मुकदमों के लंबित रहने की समय सीमा को 15 वर्ष से घटाकर 3 वर्ष करने के लक्ष्य को प्राप्त करना है।
- जवाबदेही, इस नीति का महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ है।इसके लिए यह आवश्यक है कि मुकदमों के निपटारे की प्रक्रिया का आवश्यक रूप से आलोचनात्मक मूल्यांकन किया जाए।
- नीतियों के कार्यान्वय तथा जबावदेही की निगरानी हेतु अधिकारप्राप्त समितियों (Empowered committees) की स्थापना का प्रावधान है।
- यह एक वैकल्पिक विवाद निपटान तंत्र के रूप में जिम्मेदार तरीके से मध्यस्थता की आवश्यकता को स्वीकार करता है। इसमें मध्यस्थता के लिए कुछ दिशानिर्देश तय किये गये हैं।

NLP 2010 में समस्याएं

- यह जिम्मेदारी और दक्षता का निर्धारण करने के लिए मापदंड स्थापित करने में विफल रही। इसकी विषय वस्तु में इस नीति का उल्लंघन करने वाले अधिकारियों के विरुद्ध 'उचित कार्रवाई' को परिभाषित नहीं किया गया।
- इसमें नीति के कार्यान्वयन को विनियमित करने हेतु "अधिकार प्राप्त समितियों" के गठन का प्रावधान है। लेकिन उनकी भूमिका और शक्तियाँ स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं की गई हैं।
- इसमें सरकारी मुकदमेबाजी को कम करने के वास्तविक प्रभाव का मूल्यांकन करने वाले किसी प्रभाव आकलन ढांचे का अभाव है।

VISION IAS

आगे की राह

- NLP के पुनः अवलोकन में निम्नलिखित महत्वपूर्ण विशेषताओं को शामिल करने की आवश्यकता है :
    - इसके उद्देश्य स्पष्ट होने चाहिए, जिनका मूल्यांकन किया जा सके;
    - विभिन्न पदाधिकारियों की भूमिका को अनिवार्यतः बिन्दुवार स्पष्ट रूप से बताया जाना चाहिए;
    - मुकदमा चलाने के न्यूनतम मानकों को सूचीबद्ध किया जाना चाहिए;
    - उचित जवाबदेही तंत्र स्थापित की जानी चाहिए;
    - नीति के उल्लंघन के परिणामों को अनिवार्यतः स्पष्ट किया जाना चाहिए;
    - एक आवधिक प्रभाव आकलन संबंधी कार्यक्रम का भी समावेश किया जाना चाहिए।

इस प्रकार एक मुकदमेबाजी नीति से, सरकार स्वयं को एक वादी (litigant) के रूप में कैसे प्रस्तुत करती है, और यह समस्या को नियंत्रित करने में किस प्रकार सहायता कर सकती है, इन विषयों पर गहरा प्रभाव पड़ सकता है, बशर्ते नीति का निर्माण समस्या की संपूर्ण समझ के साथ किया जाए तथा अनुमान के बजाय साक्ष्य के आधार पर समाधान प्रस्तुत किया जाए।

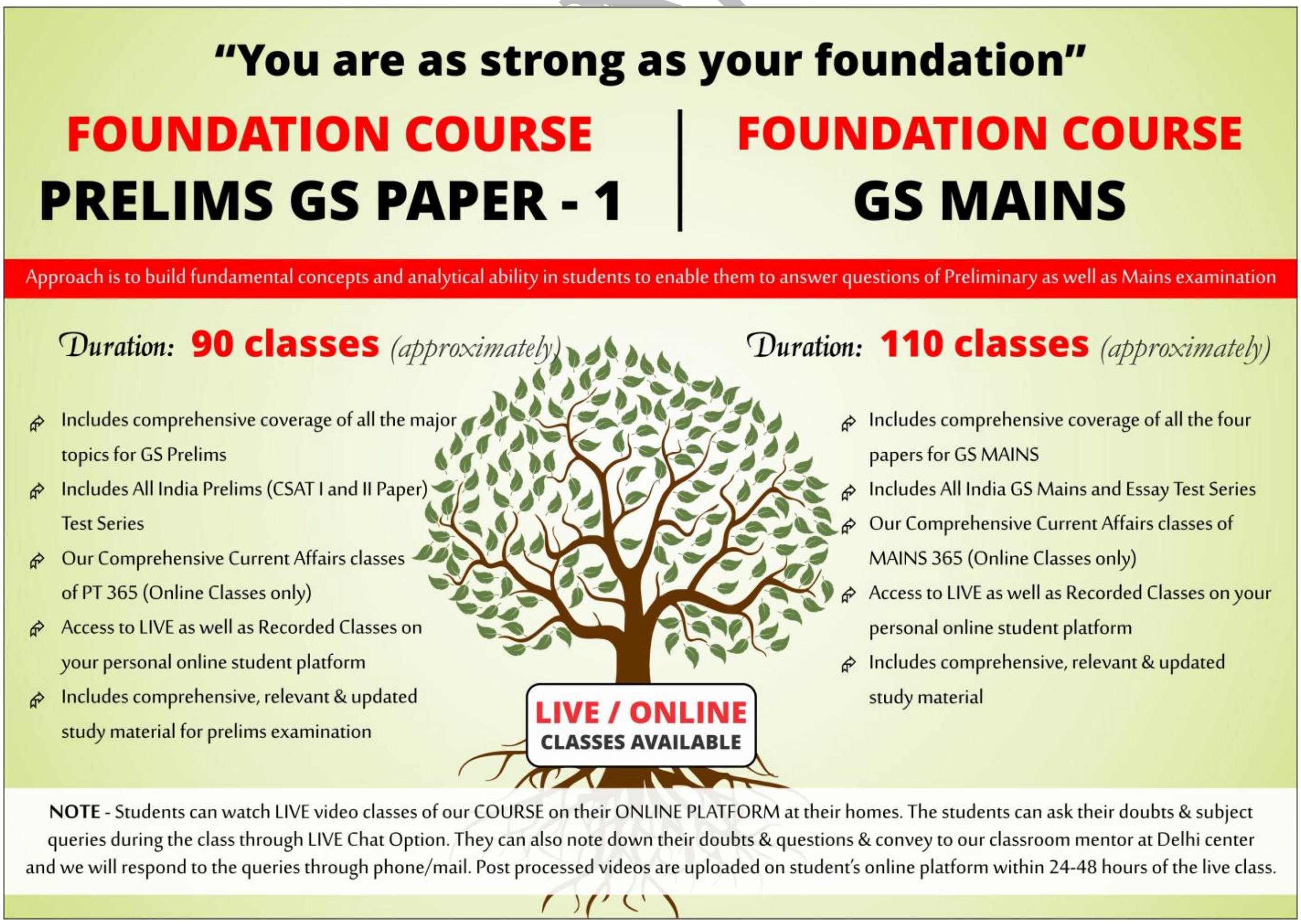

4. संवैधानिक, नियामकीय एवं अन्य निकाय

(CONSTITUTIONAL, REGULATORY AND OTHER BODIES)

4.1. CBI

सुर्ख़ियों में क्यों?

- **CBI** के लिए नए कानून हेतु कार्मिक, लोक शिकायत, कानून और न्याय पर स्थायी संसदीय समिति (PSC) की सिफारिश को भारत सरकार ने अस्वीकार कर दिया है l

केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो

- प्रमुख आपराधिक जांचों तथा भ्रष्टाचार से संबंधित मामलों के लिए यह केंद्र की मुख्य जांच एजेंसी है|
- इसकी उत्पत्ति 1941 में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार की जांच के लिए स्थापित **स्पेशल पुलिस एस्टब्लिशमेंट** से हुई है|
- CBI का गठन 1963 में **संथानम समिति** की सिफारिश पर गृह मंत्रालय के प्रस्ताव द्वारा हुई थी|
- भ्रष्टाचार के मामलो में CBI, CVC के अंतर्गत और अन्य मामलों में कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग के अंतर्गत आती है।
- वर्तमान में यह **DOPT के अंतर्गत एक संलग्न(attached) कार्यालय** के रूप में कार्य करती है।
- यद्यपि DSPE अधिनियम CBI को विधिक शक्तियां देता है, CBI एक सांविधिक निकाय नहीं है:
  - DSPE अधिनियम में CBI शब्द उल्लिखित नहीं है|
  - MHA का कार्यकारी आदेश इस बात का उल्लेख नहीं करता है कि CBI को DSPE अधिनियम के अंतर्गत गठित किया जायेगा|

CBI के कार्य :

- भ्रष्टाचार के मामले|
- आर्थिक अपराध जैसे वित्तीय धोखाधड़ी, नारकोटिक्स आदि|
- विशेष अपराध जैसे आतंकवाद,फिरौती के लिए अपहरण आदि l

पृष्ठभूमि

- CBI को स्वतंत्रत बनाने के लिए **विनीत नारायण वाद** में सुप्रीम कोर्ट ने सुधारों की अनुशंसा की थी|
- उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि **CBI** के निदेशक की नियुक्ति एक समिति की सिफारिशों के आधार पर होनी चाहिए जिसकी अध्यक्षता केंद्रीय सतर्कता आयुक्त करेंगे तथा गृह सचिव एवं कार्मिक विभाग के सचिव सदस्य के रूप में होंगे|
- इससे पूर्व सर्वोच्च न्यायालय ने **CBI** के कामकाज में राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण इसे कई मालिकों वाले एक **बंदी तोते (caged parrot)** की संज्ञा दी थी।
- PSC की 85 वीं रिपोर्ट DSPE अधिनियम 1946 को नए CBI कानून द्वारा प्रतिस्थापित करना चाहती थी|

नए स्वतंत्र कानून की आवश्यकता:

- **प्रभावी कैडर प्रबंधन-** वर्तमान में, **CBI** में रिक्तियों को राज्य या अन्य केंद्रीय बलों के माध्यम से भरा जाता है। इसलिए, एक अलग कानून के अंतर्गत **CBI** अपने कैडर का प्रबंधन अधिक कुशलता से कर सकती है।चूँकि वरिष्ठ अधिकारियों की भावी पोस्टिंग सरकार पर निर्भर होती है। अतः सरकार द्वारा इन पर दबाव बनाने की सम्भावना रहती है| यह सरकार को किसी मामले की जांच के महत्वपूर्ण चरणों में अधिकारियों को स्थानांतरित करने के लिए सक्षम बनाता है|
- **प्रशासनिक स्वायत्तता-** CBI निदेशक को पदेन सचिव की शक्तियां दी जानी चाहिए जिससे उन्हें कार्मिक मंत्री को प्रत्यक्ष रिपोर्टिंग की अनुमति मिल सके एवं मूल प्रशासनिक मामलों के लिए DoPT जाने से बचा जा सके|

VISION IAS

- **वित्तीय शक्तियां**- वर्तमान में CBI आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं है,क्योंकि यह कार्मिक मंत्रालय के प्रशासनिक एवं वित्तीय नियंत्रण के अधीन कार्य करता हैं। इस प्रकार सरकार द्वारा दखल देने की संभावना बनी रहती है।
- **राज्यों पर निर्भरता** - चूंकि CBI पुलिस एजेंसी है (क्योंकि यह CrPC की प्रक्रिया के अनुसार काम करती है) और पुलिस राज्य का विषय है। CBI को जाँच प्रारंभ करने से पहले राज्य सरकार की सहमति पाने के लिए कठिन प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है।
- **समयसीमा का निर्धारण** - अभी तक CBI की जांच पूरी होने में लंबा समय लगता है जिसे बुनियादी सुविधाओं तथा मानव संसाधन में सुधार करके एवं समयसीमा तय करके कम किया जा सकता है।

संबंधित मुद्दे

- नए CBI कानून को **कानून और व्यवस्था से संबंधित राज्य सूची के विषय में** संवैधानिक संशोधन द्वारा पारित किये जाने की आवश्यकता होगी जो सहकारी संघवाद की भावना का उल्लंघन होगा।
- CBI की शक्तियों का निहित लाभ के लिए दुरुपयोग किया जाता है जिससे एजेंसी की पारदर्शिता और उत्तरदायित्व में गिरावट आती है।

CBI को सशक्त बनाने के लिए सरकार द्वारा उठाए गए कदम

- प्रभावी अभियोजन के लिए CBI अदालतों का संचालन।
- वर्ष 2017 में 3 वर्षों की अवधि के लिए DSP पद पर भर्ती के लिए CBI को UPSC से सलाह लेने के प्रावधान से छूट दी गई है।
- नेशनल लॉ स्कूल ऑफ इंडिया यूनिवर्सिटी और IIM बैंगलोर से प्रशिक्षण के माध्यम से CBI अधिकारियों की जांच कौशल, फॉरेंसिक डाटा कलेक्शन, सबूत, कौशल इत्यादि को बढ़ाने के लिए एडवांस्ड सर्टिफाईड कोर्स संचालित करना।
- CBI में प्रशिक्षण केंद्रों के आधुनिकीकरण के लिए विभिन्न योजनाओं, सीबीआई ई-गवर्नेंस, सीबीआई शाखाओं / कार्यालयों के व्यापक आधुनिकीकरण आदि का कार्यान्वयन किया जा रहा है।

आगे की राह :

CBI की भूमिका, अधिकार क्षेत्र और कानूनी शक्तियों को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जाना चाहिए। यह इसे लक्ष्य स्पष्टता, भूमिका स्पष्टता, सभी क्षेत्रों में स्वायत्तता और एक स्वतंत्र स्वायत्त वैधानिक निकाय के रूप में स्थापित करने के साथ ही इसकी एक बदलती छवि को भी प्रदर्शित करेगा। इसलिए CBI कानून सही दिशा में एक कदम होगा। इसके अलावा CBI को ठोस बनाने के लिए लोकपाल विधेयक और CVC को भी सशक्त बनाया जाना चाहिए।

4.2. NHRC से सम्बंधित मुद्दे

(Issues Related To NHRC)

सुर्ख़ियों में क्यों ?

मानवाधिकारों हेतु संयुक्त राष्ट्र के उच्चायुक्त से संबद्ध राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थानों के लिए ग्लोबल एलायंस फॉर नेशनल ह्यूमन राइट्स इन्स्टिट्यूशंस, [Global Alliance for National Human Rights Institutions(GANHRI)] ने नवंबर 2017 तक राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (NHRC) के पुनर्प्रत्यायन (re-accreditation) को स्थगित कर दिया है।

NHRC एक वैधानिक निकाय है जो मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 के तहत गठित किया गया है।

NHRC (राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग) में शामिल हैं:

- अध्यक्ष, जिसे भारत के उच्चतम न्यायालय के सेवानिवृत्त मुख्य न्यायाधीश होना चाहिए।
- एक सदस्य भारत के उच्चतम न्यायालय का वर्तमान या पूर्व न्यायाधीश होना चाहिए।
- एक सदस्य किसी उच्च न्यायालय का वर्तमान या पूर्व मुख्य न्यायाधीश होना चाहिए।
- मानवाधिकारों से संबंधित मामलों में ज्ञान एवं व्यावहारिक अनुभव रखने वाले लोगों में से दो सदस्य नियुक्त किए जाने चाहिए।
- इसके अलावा, चार राष्ट्रीय आयोगों (अल्पसंख्यक, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति, महिला) के अध्यक्ष पदेन सदस्य के रूप शामिल होते हैं।

VISION IAS

प्रदत्त कारण:

चयन प्रक्रिया में दोष

- पर्याप्त रूप से स्पष्ट और पारदर्शी नहीं।
- सदस्यों की नियुक्ति के लिए समान और सटीक मानदंडों की कमी।
- शीर्ष पदों पर नियुक्ति के लिए किसी विज्ञापन का नहीं दिया जाना।

जांच प्रक्रिया में दोष

- गैर-स्वतंत्र जांचकर्ता - मानवाधिकारों के उल्लंघन की जांच में सेवारत या सेवानिवृत्त पुलिस अधिकारियों की भागीदारी, विशेषकर जहां कथित अपराधों में पुलिस स्वयं ही शामिल हो।

संगठन स्तर पर दोष

- NHRC के कर्मचारियों में केवल 20% महिलाएं है और 2004 तक, शासी निकाय में कोई भी महिला नहीं थी।
- उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश को अध्यक्ष के रूप में और न्यायपालिका के वरिष्ठ सदस्यों के मध्य से ही चयन करने की विधायी बाध्यताएँ उन उम्मीदवारों के संभावित सूची को सीमित करती हैं, जिन्हें नियुक्त किया जा सकता है, विशेषकर महिलाएं।

अन्य समस्याएं

- अभियोग का विशाल बैकलॉग-करीब 40,000 मामले लंबित हैं।
- शिकायत निवारण तंत्र और NHRC की अर्ध-न्यायिक कार्यवाही संतोषजनक नहीं है, क्योंकि सभी हितधारकों की प्रक्रिया में समान और निर्बाध पहुंच नहीं है।

प्रत्यायन के लिए

- पेरिस सिद्धांतों के अनुपालन के अलावा, प्रत्यायन राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थान को अंतर्राष्ट्रीय मान्यता और संरक्षण प्रदान करता है।
- A-स्टेटस प्रत्यायन (पेरिस सिद्धांतों का पूर्ण अनुपालन) राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थानों (NHRI) की अंतरराष्ट्रीय समन्वय समिति (ICC) के कार्यों में भागीदारी और निर्णय लेने की प्रक्रिया के साथ-साथ मानवाधिकार परिषद के कार्यों और संयुक्त राष्ट्र के अन्य तंत्रों में शामिल होने की अनुमति देता है।

पेरिस सिद्धांत

UN पेरिस सिद्धांतों ने अंतर्राष्ट्रीय मानक प्रदान किए हैं जिसके आधार पर NHRI को पांच प्रमुख मूल्यांकनों के तहत प्रत्यायन प्रदान किया जा सकता है: इसके लिए आवश्यक है कि संस्थान :

- मानवाधिकारों के उल्लंघन की किसी भी स्थिति पर नज़र रखें।
- सरकार को विशिष्ट मानवाधिकार उल्लंघनों पर, कानूनों से सम्बंधित और सामान्य अनुपालन पर तथा अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार निर्देशों के कार्यान्वयन से जुड़े मुद्दों पर सलाह दे।
- क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से संबंध स्थापित करने में सक्षम हो।
- मानव अधिकारों के क्षेत्र में शिक्षित और सूचित करने की क्षमता से युक्त हो।
- तथा साथ ही कुछ संस्थानों को अर्ध-न्यायिक क्षमता दी जानी चाहिए।

NHRC से संबंधित अन्य मुद्दे

- इसके पास केवल अनुशंसात्मक शक्ति है। अतः यह कार्यवाही न होने की दशा मे दण्ड नहीं दे सकता है।
- इसकी वार्षिक रिपोर्ट समय पर संसद मे नहीं रखी जाती है।
- पर्याप्त कार्यबल की कमी
- उपलब्ध बजट की अधिकांश मात्रा कार्यालय गतिविधियों पर व्यय हो जाती है जिस कारण अनुसन्धान एवं जागरूकता अभियान हेतु कम धन बचता है।
- यह ऐसे मामले की जाँच के लिए अधिकृत नहीं है जिसे घटित हुए एक वर्ष से अधिक समय बीत गया हो।

VISION IAS

4.3. राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग (NCBC)

(National Commission for Backward Classes)

सुर्ख़ियों में क्यों ?

- लोकसभा ने एक संवैधानिक संशोधन विधेयक पारित किया है जो संविधान में **राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग (NCBC)** का **शैक्षिक और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए राष्ट्रीय आयोग** के नाम से पुर्ननामकरण करता है।
- इसके साथ-साथ 1993 के कानून का निरसन करने के लिए राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग विधेयक, 2017 नामक एक विधेयक भी पारित किया गया।

विधेयक की विशेषताएं

- **संवैधानिक स्थिति**: शैक्षिक और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए **अनुच्छेद 338B** के अंतर्गत एक आयोग का गठन।
- **दो के स्थान पर एक सूची**: यह अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति हेतु सूची की भाँति, अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए भी केवल एक केंद्रीय सूची का अनुबंध करता है। केन्द्र तथा राज्य पिछड़ा वर्ग सूचियों का कोई समांतर अस्तित्व नहीं होगा।
- **समावेश/बहिष्कार का निर्णय संसद द्वारा किया जाना - अनुच्छेद 342A** के अंतर्गत राष्ट्रपति विभिन्न राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों में शैक्षिक और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों को निर्दिष्ट कर सकता है। यह कार्य वह संबंधित राज्य के राज्यपाल के परामर्श से कर सकता है। लेकिन, यदि पिछड़े वर्गों की सूची में संशोधन किया जाना है तो संसद के कानून की आवश्यकता होगी।
- **विकास**: आरक्षण के अतिरिक्त इस विधेयक ने विकासात्मक आवश्यकताओं को मान्यता प्रदान की है। यह शैक्षिक और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों की शिकायतों को सुनेगा। उल्लेखनीय है कि यह कार्य अब तक अनुच्छेद 338 के अंतर्गत राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग द्वारा सम्पन्न किया जाता रहा है।
- **शैक्षिक और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों की परिभाषा**: अनुच्छेद 342A के अंतर्गत "शैक्षिक और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्ग" माने जाने वाले पिछड़े वर्गों को परिभाषित करने के लिए अनुच्छेद 366 के अंतर्गत खण्ड (26C) का समावेश।

संशोधन के लाभ

- **पारदर्शिता:** अब कार्यकारी आदेश के माध्यम से लिए जाने वाले निर्णय के बजाए संसद के माध्यम से ऐसे निर्णय लेने होंगे, जिससे पारदर्शिता को बढ़ावा मिलेगा।
- **राजनीतिक अवसरवाद:** गैर पिछड़ा वर्ग समुदायों द्वारा इस सूची में अपना नाम सम्मिलित किए जाने हेतु दबाव डाले जाने के प्रति राज्य सरकारों एवं केंद्र सरकार के मनमानेपन पर अंकुश लगेगा, क्योंकि विपक्ष सरकार पर सरलतापूर्वक दोषारोपण नहीं कर सकेगा और इस प्रकार चुनावों के दौरान जनसमर्थन प्राप्त करने हेतु महत्वपूर्ण बढ़त नहीं प्राप्त कर सकेगा।
- **संवैधानिक प्राधिकरण:** इसे संवैधानिक प्राधिकरण का दर्जा देने से यह सुनिश्चित होगा कि अनुसूचित जाति/जनजाति आयोगों के समान अन्य पिछड़ा वर्ग के सदस्यों की शिकायतों की सुनवाई करने के संबंध में इसे अधिक शक्ति प्राप्त होगी।

मुद्दे

- **गठन**: मंडल मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रकाश में विशेषज्ञ निकाय के रूप में NCBC का गठन करने के मामले में NCBC अधिनियम 1993 में यह प्रावधान है कि इसका अध्यक्ष कोई पूर्व न्यायाधीश एवं सदस्य सचिव भारत सरकार का कोई सेवानिवृत सचिव स्तर का अधिकारी होना चाहिए, एक सदस्य सामाजिक वैज्ञानिक होना चाहिए एवं दो व्यक्ति सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के संबंध में विशेष जानकारी रखने वाले होने चाहिए। नए NCBC विधेयक में विशेषज्ञ निकाय की यह विशेषता प्रदान नहीं की गई है।
- **संघीय संरचना**: यह राज्यों में चल रही आरक्षण की मांगों को संभालने की राज्य सरकार की शक्ति को कम कर देगा। इस प्रकार, यह विधेयक संघीय संरचना को प्रभावित करता है। हालांकि, इस संशोधन विधेयक को अभी राज्यसभा द्वारा 2/3 बहुमत से पारित किया जाना एवं 50% से अधिक राज्य सरकारों द्वारा पुष्ट किया जाना शेष है। यह इस मुद्दे पर राज्यों की सहमति को सुनिश्चित करेगा।
- नए NCBC की अनुशंसाएं अभी भी बाध्यकारी नहीं हैं।
- **सूची की पुनसर्मीक्षा**: अनुच्छेद 338B (5) NCBC के परामर्श से सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग की सूची के आवधिक पुनरीक्षण पर सर्वोच्च न्यायालय के अधिदेश पर भी मौन है।

VISION IAS

- **अनुच्छेद 366 का संशोधन**: अन्य पिछड़े वर्गों की परिभाषा उनके वर्तमान सामाजिक और शैक्षणिक मापदंडों की सीमाओं से परे जाने की संभावना है।
- **अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के अनुसार समान स्तर पर**: इस संशोधन विधेयक में पिछड़े वर्गों एवं अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति दोनों को भेदभाव, बहिष्कार और हिंसा की दृष्टि से एक ही लीग में सम्मिलित किया है जिसमें तर्क और ऐतिहासिक औचित्य का अभाव है।

4.4 ट्रिब्यूनलाइजेशन

(Tribunalisation)

समाचार में क्यों?

वर्तमान में देश में विभिन्न न्यायिक क्षेत्रों वाले अनेक अधिकरण विद्यमान हैं जिससे अधिकरणों की अधिकता की समस्या उत्पन्न हो गई है।

पृष्ठभूमि

- छोटे मामलों में अंतिम अपीलीय निकाय के रूप में कार्य करने के लिए **प्रथम प्रशासनिक सुधार समिति** (1966-1970) ने 'सिविल सर्विस ट्रिब्यूनल्स' स्थापित करने की सिफारिश की थी।
- **42वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 1976** ने संविधान में **अनुच्छेद 323A और अनुच्छेद 323B** को शामिल किया जो प्रशासनिक अधिकरण एवं अन्य अधिकरणों के क्षेत्रों को परिभाषित करता है।
- **जे. सी. शाह समिति (1977)** ने सेवा संबंधी मामलों पर फैसला लेने के लिए एक प्रशासनिक न्यायाधिकरण की स्थापना हेतु सिफारिश की थी।

अनुच्छेद 323A – संसद विधि द्वारा, संघ या किसी राज्य के अथवा भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अथवा सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण के अधीन किसी निगम के कार्यकलाप से संबंधित लोक सेवाओं और पदों के लिए भर्ती तथा नियुक्त व्यक्तियों की सेवा शर्तों के संबंध में विवादों और परिवादों के प्रशासनिक अधिकरणों द्वारा न्यायनिर्णयन या विचारण (सुनवाई) के लिए उपबंध कर सकेगी।
अनुच्छेद 323B – समुचित विधान मंडल, विधि द्वारा, किसी कर के उदग्रहण, निर्धारण, संग्रहण और प्रवर्तन एवं औद्योगिक व श्रम विवाद आदि से जुड़े विवादों, परिवादों या अपराधों के अधिकरणों द्वारा न्यायानिर्णयन या विचारण के लिए उपबंध कर सकेगा।

प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम (1985) सरकारी कर्मचारियों की सेवाओं की शर्तों या नियुक्ति के संबंध में विवादों या परिवादों के न्यायनिर्णयन या विचारण हेतु अधिनियमित किया गया था। इसके अंतर्गत स्थापित प्रशासनिक अधिकरण को कर्मचारियों के सेवा मामलों के संबंध में **मौलिक क्षेत्राधिकार** प्राप्त है।

न्यायालयों और अधिकरण के बीच अंतर

- विवादों को सुलझाने हेतु अधिकरणों की स्थापना इसलिए की गई ताकि पारंपरिक न्यायालयों की तुलना में कम औपचारिकता, कम खर्चीला और तीव्र प्रक्रिया हो।
- अधिकरणों के सदस्यों के पास उनके समक्ष विचाराधीन विषय के बारे में विशेष ज्ञान होता है, जबकि न्यायाधीशों के पास नहीं होता है। हालांकि किसी भी अधिकरण के सदस्य न्यायाधीश नहीं होते हैं।
- अधिकरण को संघीय या अनंतिम क़ानून द्वारा स्थापित किया जाता है।

ट्रिब्यूनलाइजेशन से संबंधित चिंताएं

- अधिकरणों की बढ़ती संख्या चिंता का मुख्य कारण बनी हुई है क्योंकि इसे न्यायिक कार्यों पर नियंत्रण पाने के लिए कार्यपालिका द्वारा एक प्रयास के रूप में देखा गया है।
- अधिकरण में की जाने वाली नियुक्तियों पर सामान्यतः कार्यपालिका का नियंत्रण होता है। इससे संविधान की बुनियादी संरचना के रूप में स्थापित स्वतंत्र न्यायपालिका और शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत पर प्रश्न चिन्ह खड़ा होता है।
- न्याय तक पहुँचने में कई याचिकाकर्ताओं को अंतर्निहित कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है क्योंकि कुछ अधिकरणों की बेंच केवल नई दिल्ली में ही स्थित है।
- कुछ अधिकरण अपर्याप्त कर्मचारियों की गंभीर समस्याओं का सामना कर रहे हैं।
- इन अधिकरणों में सेवा, सेवानिवृत्ति की आयु आदि के लिए समान नियमों का अभाव हैं, अतः वे अपने अस्तित्व के लिए पूर्ण रूप से संबंधित मंत्रालयों की कृपा पर निर्भर होते हैं।

VISION IAS

- प्रशासनिक अधिकरण मूलतः विशेषिकृत न्याय प्रदान करने हेतु और नियमित न्यायालयों पर मुकदमो का बोझ कम करने के लिए स्थापित किए गए थे। लेकिन अधिकरण के निर्णयों के विरुद्ध मुकदमेबाजी के कारण यह उद्देश्य अधूरा रह गया क्योंकि अंततः यह मामला न्यायपालिका तक पहुँचता है। जिसका परिणाम यह होता है कि अधिकरण के इन मामलों से न्यायालय प्रणाली पर और भार बढ़ रहा है।
- **अधिकरण द्वारा न्यायपालिका के क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण** -सशस्त्र बल अधिकरण ने सशस्त्र बलों को गैर-कार्यात्मक पदोन्नति प्रदान किया, जिस पर आपत्ति जताई गई है कि इनके पास इस तरह का **आदेश पारित करने की शक्ति नहीं है**।

आगे की राह

- *चंद्र कुमार (1997)* और *एनसीएलटी (2010)* में न्यायालय ने सुझाव दिया कि अधिकरण जो कि न्यायालय के अधिकार क्षेत्रों की जगह ले रहे हैं, उन्हें उसी प्रकार की संवैधानिक सुरक्षा मिलनी चाहिए।
- इसके अतिरिक्त, मद्रास बार एसोसिएशन बनाम भारतीय संघ वाद में सुप्रीम कोर्ट ने अपने निर्णय में हमारे संविधान द्वारा भारत में अनुमत अधिकरण की सीमा को स्पष्ट किया। इसलिए इन संवैधानिक सिद्धांतों के अनुरूप संबंधित कानून बनाने के प्रयास विधायिका द्वारा किया जाना चाहिए।

अधिकरण को केवल स्वतंत्र ही नहीं होना चाहिए बल्कि स्वतंत्र दिखना भी चाहिए। उन्हें मंत्रालय के विभागों या सरकार की कार्यपालिका शाखा के हिस्से के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। इसलिए, अधिकरण को एकल प्रणाली के तहत लाने और अधिकरण को औपचारिक रूप देने की तत्काल आवश्यकता है।

4.5 CCI और क्षेत्र विशिष्ट नियामक

(CCI and Sector-Specific Regulators)

सुर्ख़ियों में क्यों?

भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग (CCI) ने टैरिफ निर्धारण पर भारतीय दूरसंचार विनियामक प्राधिकरण (TRAI) द्वारा जारी परामर्श पत्र के सन्दर्भ में इसे आड़े हाथों लिया है। CCI के मुताबिक *टेलिकॉम वॉचडॉग* द्वारा *डोमिनेंट पोजिशन एंड प्रीडेटरी प्राइसिंग* (अपहरक मूल्य निर्धारण) के पहलुओं की जांच की जा रही है। यह भारत में एंटी-ट्रस्ट बॉडी के अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण है।

पृष्ठभूमि

- भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग (CCI) एक सांविधिक निकाय है जो प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002 को पूरे भारत में प्रवर्तित कराने के प्रति जवाबदेह है ताकि समान अवसर सुनिश्चित किये जा सकें और उपभोक्ता/जनता के हितों को परिपुष्ट किया जा सके।
- दूसरी ओर, विशिष्ट विनियमन की आवश्यकता को देखते हुए कई वर्षों से कई क्षेत्र विशिष्ट नियामकों का गठन भी किया गया है।
- क्षेत्र-विशिष्ट नियामक प्रायः विभिन्न साधनों के संयुक्त रूप को अभिव्यक्त करते हैं जिनके द्वारा सरकार किसी विशेष क्षेत्र से संबंधित विभिन्न हितधारकों के द्वारा अपनाई जाने वाली बाजार संबंधी कार्यप्रणाली या बाज़ार की संरचना को निर्धारित करती है। उदाहरण के लिए TRAI, SEBI, IRDA आदि।

समाविष्ट मुद्दे

CCI और क्षेत्र-विशिष्ट नियामकों की भूमिका का पूरक होना आवश्यक है।

- **सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ –** क्षेत्रक आधारित नियामकों के पास संबंधित क्षेत्रों के कार्यक्षेत्र में विशेषज्ञता होती है जबकि CCI को सभी आर्थिक क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित कराने के लिए व्यापक अधिदेश के साथ गठित किया गया है।
- **अग्रसक्रिय बनाम प्रतिक्रियात्मक -** क्षेत्र विशिष्ट विनियामक संभावित समस्या की पहचान करता है और समस्या उत्पन्न होने से पहले व्यवहारिक समाधान हेतु एक प्रशासनिक तंत्र का विकास करता है जबकि दूसरी ओर, CCI प्रायः बाजार व्यवस्था में समस्या के प्रस्तुत होने के पश्चात उसका समाधान करता है।
- TRAI, SEBI, IRDA etc..

समय-समय पर उठने वाली अधिकार क्षेत्र के अतिव्यापन की समस्या कई क्षेत्रों में समानांतर विनियमन और टकराव का एक स्रोत हो सकती है जैसे कि:

- लाईसेंस की शर्तें
- बाजार प्रभुत्व
- मूल्य निर्धारण पर एकाधिकार

- प्रतिबंधित व्यवसायिक परम्पराएं
- विलय पर नियंत्रण

उदाहरण के लिए:

- वित्तीय क्षेत्र इस बात का गवाह है कि पूर्व में बैंकिंग क्षेत्र में विलय के संबंध में भारतीय रिज़र्व बैंक और CCI के बीच टकराव की स्थिति बन चुकी है।
- पूर्व में दूरसंचार क्षेत्र के टैरिफ से जुड़ा मुद्दा CCI और TRAI के मध्य विवाद का विषय रहा है।
- भारत में कंपनियों के विलय या अधिग्रहण तथा एकीकरण की प्रक्रिया के दौरान CCI और SEBI के मध्य शक्ति के अतिव्यापन की समस्या उत्पन्न हुई है।
- CERC और CCI के अधिकार क्षेत्र में भी काफी हद तक अतिव्यापन की स्थिति उत्पन्न हुई है उदाहरण के लिए, विद्युत् क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा विरोधी समझौते।

आगे की राह

- क्षेत्र विशिष्ट नियामकों के तकनीकी डोमेन और प्रतिस्पर्धा विरोधी व्यवहार के विनियमन के बीच अंतर को स्पष्ट किया जाना चाहिए। ध्यातव्य है कि प्रतिस्पर्धा विरोधी व्यवहार का विनियमन पूर्णतः CCI का कार्य है अतः प्रतिस्पर्धा विरोधी कानूनों के प्रवर्तन का दायित्व प्रतिस्पर्धा अधिकरण को ही प्रदान किया जाना चाहिए।
- नीति के मामले में, विभिन्न क्षेत्रीय नियामकों और CCI के बीच औपचारिक और अनौपचारिक आदान-प्रदान को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, कर्मियों की प्रतिनियुक्ति या प्रशिक्षण के आधार पर आदान-प्रदान।
- अंतर्राष्ट्रीय सर्वोत्तम व्यवहारों से प्राप्त अनुभवों द्वारा प्रतिस्पर्धा नियामक और क्षेत्र विशिष्ट नियामकों के बीच सहयोग पर एक स्पष्ट अवधारणा का विकास किया जा सकता है। उदाहरण के लिए फिनलैंड में दोनों संस्थाओं ने ओवरलैपिंग (अतिव्यापन) को समाप्त करने के तरीकों को परिभाषित करते हुए समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए हैं।

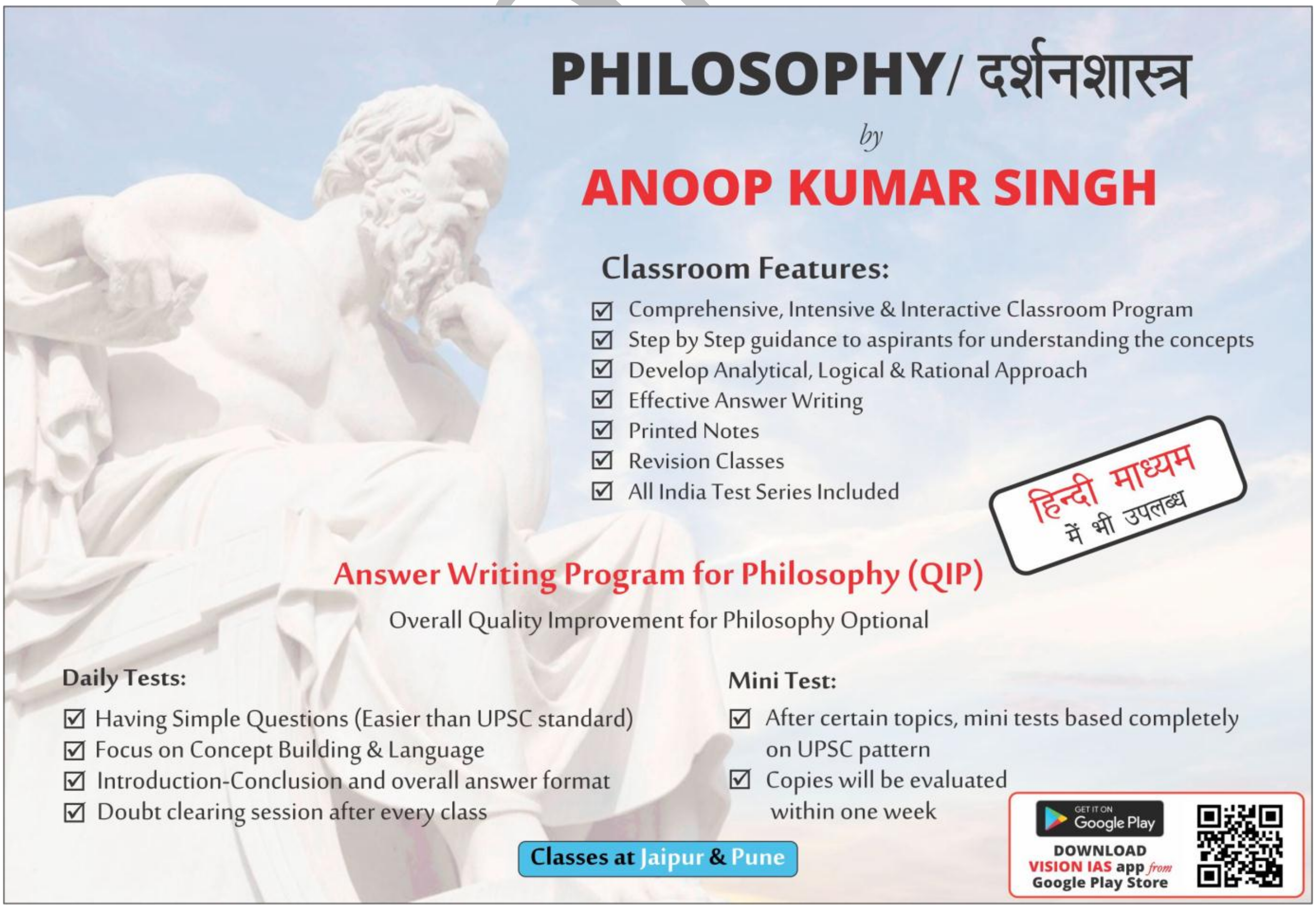

5. भारत में चुनाव

(ELECTIONS IN INDIA)

5.1. RPA से सम्बंधित मुद्दें

(ISSUES RELATED TO RPA)

5.1.1. धर्म एवं चुनाव - RPA की धारा 123(3)

(RELIGION AND ELECTIONS-SECTION 123(3) OF RPA)

सुर्ख़ियों में क्यों?

- उच्चतम न्यायालय की एक सात सदस्यीय पीठ ने 4-3 के बहुमत से फैसला सुनाया कि "धर्म, मूलवंश, जाति, समुदाय या भाषा को चुनावी प्रक्रिया में किसी भी तरह की भूमिका निभाने की अनुमति नहीं दी जाएगी"
- यह भी कहा गया कि यदि इन विचारों को वोट मांगने का आधार बनाया गया तो किसी उम्मीदवार का चुनाव रिक्त और शून्य घोषित किया जा सकता है।

निर्णय

- जनप्रतिनिधित्व अधिनियम (Represenation of People Act:RPA) की धारा 123(3) की एक व्याख्या के रूप यह निर्णय दिया गया था। धारा 123 (3) चुनाव प्रचार के लिए "भ्रष्ट आचरण" का पालन करने से संबंधित है।
- पीठ का कार्य RPA की धारा 123 (3) में शब्द 'उसका (his)' की व्याख्या करना था।
- बहुमत का मानना था कि यहाँ "उसका" (his) किसी भी उम्मीदवार या उसके एजेंट या उम्मीदवार या निर्वाचक की सहमति से अपील करने वाले किसी अन्य व्यक्ति को दर्शाता है। इस व्याख्या को न्यायसंगत सिद्ध करने के लिए पीठ ने RPA के विभिन्न संशोधनों से संकेत लिए।
- यह भी कहा गया है कि चुनावी प्रक्रिया की "पवित्रता" बनाए रखने के लिए; धर्म, जाति और भाषा जैसे कुछ तर्कों पर अब बहस नहीं होनी चाहिए।
- दूसरी तरफ असहमत न्यायाधीशों का यह मानना था कि RPA की धारा 123(3) में इस तरह की व्यापक व्याख्या की आवश्यकता नहीं है और शब्द "उसका" निर्वाचक/मतदाता को शामिल नहीं करता है।
- असहमत न्यायाधीशों ने टिप्पणी की है कि धर्म जैसे चिह्न भारतीय समाज की संरचना में गहराई में निहित हैं।

> जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 123 (3) निम्नलिखित आधार पर भ्रष्ट आचरण की घोषणा करती है:
>
> - "किसी उम्मीदवार या उसके एजेंट या उम्मीदवार की सहमति प्राप्त किसी अन्य व्यक्ति या उनके चुनाव एजेंट द्वारा किसी भी व्यक्ति को **उसके** धर्म, मूलवंश, जाति, समुदाय या भाषा के आधार पर मतदान करने अथवा मतदान से परहेज करने की अपील करना। "
> - शब्द "**उसके**" (his) को 1961 में एक संशोधन के माध्यम से शामिल किया गया था।

पक्ष मे तर्क

- धर्म के नाम पर वोट मांगना हमारे लोकतंत्र के धर्मनिरपेक्षता की संकल्पना को प्रभावित कर सकता है। अतः इस प्रकार के कृत्यों को अनुमति नही दी जा सकती है।
- देश के धर्मनिरपेक्ष ढांचे को संरक्षित एवं बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है कि रंग या अन्य किसी भी आधार पर होने वाले कट्टरता या रुढ़िवाद से कठोरता से निपटा जाए।

आलोचना

- यह परिभाषित करना कठिन है कि किस तरह की अपील धार्मिक अपील है।
- यह व्याख्या अनुच्छेद 19 के अंतर्गत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन करती है।
- RPA में अभद्र भाषा या घृणा फ़ैलाने वाले भाषण पर प्रतिबन्ध का पहले से ही प्रावधान है।

VISION IAS

- इस नियम की विस्तृत व्याख्या अकाली दल जैसे दलों को "नियमविरोधी" बना देगा क्योंकि उनका नाम ही इस व्याख्या का उल्लंघन करता है।
- भ्रष्टाचार के रूप में जाति और धर्म से जुडी लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को लागू करना वास्तविकता के साथ मेल नहीं खाता है।

5.1.2. मतदाता को प्रत्याशी की योग्यता जानने का अधिकार

(Voter's right to know Candidate's Qualification)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि **प्रत्येक मतदाता को** प्रत्याशी की शैक्षिक योग्यता के बारे में जानने का **मौलिक अधिकार** है।

मुख्य तथ्य:

- जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951, नियम एवं प्रपत्र 26 के प्रावधानों के अनुसार प्रत्याशियों को अपनी शैक्षिक योग्यता के सम्बन्ध में सही जानकारी देने का कर्तव्य निर्धारित किया गया है।
- किसी भी प्रकार की गलत घोषणा से नामांकन पत्र रद्द किये जा सकते हैं।
- जब तक नागरिकों को एक प्रत्याशी के पूर्व चाल-चलन की पूरी जानकारी न हो, तब तक मतदान का अधिकार अर्थहीन होगा।

5.1.3. प्रत्याशियों द्वारा आय के स्रोतों का प्रकटन

(Disclosure of Income Sources by Candidates)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में सरकार ने नामांकन पत्र प्रस्तुत किये जाने के समय प्रत्याशियों द्वारा स्वयं, पत्नी और आश्रितों सहित सभी की आय के स्रोतों के प्रकटन करने सम्बन्धी चुनाव आयोग के सुझावों को स्वीकृति प्रदान कर दी है। इसके अनुरूप जन प्रतिनिधित्व अधिनियम के नियमों में संशोधन भी कर दिया गया है।

इससे पूर्व प्रत्याशियों को स्वयं का, अपनी पत्नी और अपने आश्रितों का केवल PAN (परमानेंट अकाउट नंबर) का विवरण प्रस्तुत करना आवश्यक था तथा अन्य सूचनाओं का प्रकटन आवश्यक नहीं था।

कारण:

- चुनाव आयोग के अनुसार सभी प्रत्याशियों के लिए शुचिता के वही समान मानदंड होने चाहिए, जिनके लिए सरकारी कर्मचारियों को सेवा संबंधी न्यायिक प्रावधानों के अंतर्गत बाध्य किया जाता है। इससे चुनावों में धनबल के दुरूपयोग में भी कमी आ सकती है।
- इससे मतदाताओं को प्रत्याशियों के सन्दर्भ में बेहतर राय या दृष्टिकोण बनाने में सहायता मिलेगी।

5.1.4. दोषसिद्ध विधि निर्माताओं (विधायिका सदस्यों) पर आजीवन प्रतिबन्ध

(Life Time Ban of Convicted Lawmakers)

सुर्खियों में क्यों?

- **चुनाव आयोग (EC)** ने सुप्रीम कोर्ट में दायर की गई एक **जनहित याचिका का समर्थन** किया है जिसमें दोषी राजनेताओं पर चुनाव लड़ने और विधायिका में प्रवेश करने पर **आजीवन प्रतिबंध** लगाने की मांग की गई है।
- EC का मानना है कि इस तरह के प्रतिबंध संविधान के **मूल अधिकारों की भावना** तथा **अवसर की समानता** के सिद्धांत के अनुरूप हैं।

दोषी सांसदों पर प्रतिबंध लगाने के लिए मौजूदा प्रावधान

जन प्रतिनिधित्व अधिनियम (RPA), 1951 की धारा 8 में सांसदों तथा विधायकों की अयोग्यता के लिए कुछ नियम दिए गए हैं, जैसे:

- कानून की **धारा 8 (1), (2)** के अंतर्गत यदि कोई विधि निर्माता **बलात्कार, हत्या, अस्पृश्यता या सती प्रथा** का अनुपालन; **विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम** का उल्लंघन; **धर्म, भाषा या क्षेत्र के आधार** पर शत्रुता पैदा करना, **भारतीय संविधान** का अपमान करना, चुनावी कानूनों का उल्लंघन, **प्रतिबंधित वस्तुओं** का आयात और निर्यात, **आतंकवादी गतिविधियों** में शामिल होने जैसे

अपराध में लिप्त होता है तो इस धारा के अंतर्गत अयोग्य माना जाएगा। इन कृत्यों या गतिविधियों में शामिल होने की स्थिति में किसी व्यक्ति को न्यूनतम **छह वर्ष** की अवधि के लिए अयोग्य घोषित कर दिया जाएगा। इस सन्दर्भ में यह विचारणीय नहीं है कि इन परिस्थितियों में जुर्माना किया गया है या कारावास की सजा दी गई है।

- **धारा 8 (1) और 8 (2)** के अंतर्गत आने वाले अपराधों का संबंध भारतीय दंड संहिता के विभिन्न अधिनियमों से है। इन अधिनियमों के अंतर्गत नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955; भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988; आतंकवाद निरोधक अधिनियम 2002, गैरकानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम 1967 जैसे अधिनियम शामिल हैं।
- इसके अलावा धारा 8 (3) के अंतर्गत उपर्युक्त अपराधों के अतिरिक्त किसी भी अन्य अपराध के लिए दोषी ठहराए जाने वाले किसी भी विधि निर्माता को दो वर्ष से अधिक की कारावास की सजा सुनाए जाने की स्थिति में उसे दोषी ठहराए जाने की तिथि से अयोग्य माना जाएगा। ऐसे व्यक्ति को सजा पूरी किए जाने की तिथि से छह वर्ष तक चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य माना जायेगा।
- RPA, 1951 की धारा 8 (4) के अंतर्गत दोषी विधि निर्माता अपनी सीट पर बने रह सकते हैं, बशर्ते कि उन्होंने निचली अदालत के आदेश के खिलाफ तीन माह के भीतर उच्च न्यायालय में अपील दायर की हो। हालांकि, 2013 में ***लिली थॉमस बनाम यूनियन ऑफ इंडिया*** मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने RPA-1951 की धारा 8 (4) को असंवैधानिक ठहराया था।
- अतः, धारा 8 (1), 8 (2) और 8 (3) के तहत दोषी ठहराए जाने के पश्चात विधि निर्माता स्वतः अयोग्य हो जाएगा अर्थात् उसकी सीट स्वतः रिक्त मानी जाएगी।

पक्ष में तर्क

- यह राजनीति के निरपराधीकरण में सहायता करेगा। *एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स* के अनुसार 16वीं लोकसभा (2014) में चुने गए 34% नए सांसदों के खिलाफ आपराधिक मामले दर्ज हैं। 2009 में यह आंकड़ा 30% था।
- यह भविष्य में चुनाव लड़ने के इच्छुक उम्मीदवारों के लिए एक निवारक कारक (deterrent factor) के रूप में कार्य करेगा। इससे वे किसी भी आपराधिक गतिविधियों में शामिल होने से बचने का प्रयास करेंगे।
- विधानमंडल में स्वच्छ पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों का प्रवेश होगा। आम जनता का राजनीतिक व्यवस्था में विश्वास मजबूत होगा। अंततः लोकतंत्र की जड़ें मजबूत होंगी।

विपक्ष में तर्क

- आजीवन प्रतिबन्ध की सज़ा आनुपातिक रूप से अधिक प्रतीत हो सकती है क्योंकि संभव है कि उम्मीदवार बलात्कार, हत्या, आतंकवाद जैसे जघन्य अपराधों की बजाय यातायात नियमों को तोड़ने जैसी मामूली अपराध के लिए दोषी हो। इस स्थिति में भी वह चुनाव लड़ने से आजीवन प्रतिबंधित किया जा सकता है।
- सत्तारूढ़ पार्टी के नेताओं द्वारा अपने प्रतिद्वंद्वी नेताओं का सफाया करने के लिए अथवा सच्चे राजनीतिक कार्यकर्ताओं तथा निर्दोष लोगों के विरुद्ध इस प्रावधान का दुरुपयोग किया जा सकता है।

आगे की राह

भारत की राजनीतिक व्यवस्था को स्वच्छ बनाने की दिशा में दोषी विधि निर्माताओं के खिलाफ इस प्रकार का आजीवन प्रतिबंध एक दूरगामी कदम होगा। साथ ही, यह विश्वास बहाली के उपाय के रूप में भी कार्य करेगा। हालांकि यह ध्यान रखना चाहिए कि ऐसा प्रतिबंध केवल जघन्य अपराधों के लिए ही लगाया जाए।

5.2. चुनाव सुधार

(Electoral Reforms)

5.2.1. राजनीतिक दलों के वित्तपोषण में सुधार

(Reforms in Funding to Political Parties)

सुर्ख़ियों में क्यों?

संघीय बजट 2017-18 में राजनीतिक दलों के वित्त पोषण में पारदर्शिता लाने के लिए कुछ सुधारों की घोषणा की गई है।

सुधार

- राजनीतिक दल किसी एक व्यक्ति से अधिकतम 2000 रूपये की राशि प्राप्त कर सकते हैं।
- राजनीतिक दल अपने दाताओं से चेक या डिजिटल भुगतान के माध्यम से ही चंदा प्राप्त करने के हकदार होंगे।

VISION IAS

- भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम में एक संशोधन प्रस्तावित है जिससे इस संबंध में भारत सरकार द्वारा चुनावी बांड जारी करने की योजना लायी जा सके (ऐसा करने वाला भारत दुनिया का पहला देश होगा)।
- प्रत्येक राजनीतिक दल को आयकर अधिनियम के प्रावधान के अनुसार निर्धारित समय सीमा के भीतर अपना कर जमा कराना होगा।
- राजनीतिक दलों को आयकर के भुगतान से मौजूदा छूट केवल उपर्युक्त शर्तों को पूरा करने पर ही उपलब्ध होगी।

पृष्ठभूमि

- निर्वाचन आयोग ने सरकार से अज्ञात स्रोतों से राजनीतिक दलों को मिलने वाली 2000 रूपये से अधिक की राशि को प्रतिबंधित करने वाला संशोधन क़ानून लाने के लिए कहा था।
- एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स ने अपनी रिपोर्ट में विशिष्ट रूप से इंगित किया है कि राजनीतिक दलों को 2004-05 से 2014-15 के बीच 75 प्रतिशत राशि अज्ञात स्रोतों से प्राप्त हुई थी।

चुनावी बांड

- बांड केवल अधिसूचित बैंकों द्वारा जारी किए जाएंगे।
- इसे केवल चेक या डिजिटल भुगतान के माध्यम से ही खरीदा जा सकता है।
- दाता द्वारा खरीदे गए बांड राजनीतिक दलों को एक निश्चित अवधि के लिए दिए जाएंगे।
- एक अधिसूचित बैंक खाते का उपयोग कर राजनीतिक दल इन बांडों को धन/पैसे में बदल सकते हैं।
- सभी राजनीतिक दलों को अपने बैंक खाते के बारे में निर्वाचन आयोग को सूचित करना आवश्यक है।
- यह बांड एक वाहक (बीयरर) चेक की तरह होगा जो दाता को गोपनीयता की सुविधा प्रदान करेगा।

प्रभाव

- यह काले धन का इस्तेमाल करने वाले राजनीतिक दलों के वित्तपोषण की समस्या को जड़ से नष्ट करेगा।
- चुनावों में धन बल शक्ति में पर्याप्त कमी आएगी क्योंकि राजनीतिक दल सिर्फ रुपए 2000 तक नकद में स्वीकार कर सकते हैं।
- राजनीतिक दलों की कार्यप्रणाली अधिक पारदर्शी हो जाएगी और इस प्रकार ये जनता के प्रति अधिक जवाबदेह बन पाएंगे।
- यह बड़े कॉरपोरेट घरानों और राजनीतिक दलों के बीच गठजोड़ को कम करेगा।

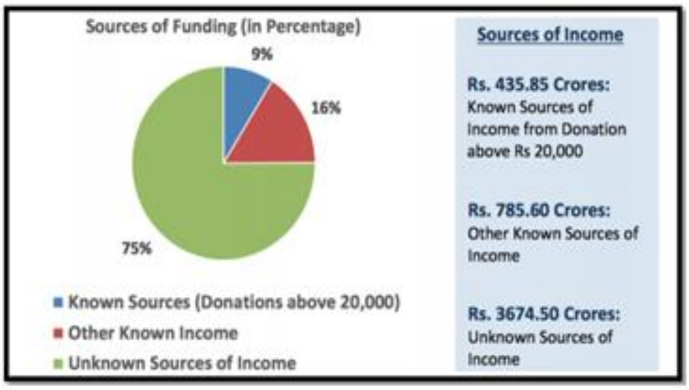

- दीर्घकाल में, इसके परिणामस्वरुप नैतिक राजनीति में सुधार और राजनीति के अपराधीकरण में कमी होगी।

चुनौतियां

- यह प्रस्ताव अवैध राजनीतिक चंदे के प्रवाह में बाधा उत्पन्न नहीं करता है, बल्कि यह केवल अलग तरीके से प्रवाह सुनिश्चित करेगा और राजनीतिक दलों को प्राप्त कुल चंदे में अज्ञात स्रोतों से नकदी के अनुपात को कम नहीं करेगा।
- राजनीतिक दलों को अब इस चंदे को छुपाने के लिए और ज्यादा लोगों के नामों की आवश्यकता होगी, किन्तु फंडिंग के सन्दर्भ में पारदर्शिता से समझौते की संभावना अभी भी बनी रहेगी।
- चुनावी बांड अज्ञात लोगों को इसे खरीदने के लिए एक तंत्र प्रदान करता है। यद्यपि, यह कदम सामान्य जनता के लिए रक्षोपाय के समान है, किन्तु इसका प्रयोग कॉर्पोरेट घरानों द्वारा दलों के वित्तपोषण में किया जा सकता है, जिससे अंत में दलों के साथ इनका गठजोड़ होता है।
- बजट में राजनीतिक दलों के लिए निर्दिष्ट समय सीमा के भीतर कर जमा करना अनिवार्य किया गया है, किन्तु कड़े दंड प्रावधान के अभाव में अनुपालन होने की संभावना कम है।

आगे की राह

- बड़े कॉरपोरेट घरानों द्वारा वित्त पोषण पर रोक लगाने की आवश्यकता है। इस तरह के चंदे को अमेरिका की तर्ज पर जनता के समक्ष प्रकट किया जाना चाहिए। राजनीतिक दलों को कॉरपोरेट घरानों को किसी भी तरह का लाभ देने से निषिद्ध करने वाला कानून लागू किया जा सकता है।

VISION IAS

- राजनीतिक दलों को RTI के दायरे में लाया जाना चाहिए जैसा कि भूटान, जर्मनी आदि देशों में किया गया है।
- बजट में पार्टियों के नकद रूप में चंदा लेने की एक ऊपरी सीमा निश्चित की जानी चाहिए।
- दिनेश गोस्वामी समिति (1990) द्वारा अनुशंसित राज्य वित्तपोषण की व्यवस्था को लागू किया जाना चाहिए।
- पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए सख्त प्रावधान किया जाना चाहिए ताकि राजनीतिक दल दाताओं की सूची बनाए रखें जिसकी आयकर विभाग द्वारा आसानी से जांच की जा सके।
- राजनीतिक दलों की निधियों का एक स्वतंत्र लेखा परीक्षक द्वारा लेखा-परीक्षण किया जाना चाहिए । इनके आंतरिक लेखा परीक्षक को यह जिम्मेदारी नहीं दी जानी चाहिए। इस विवरण को सार्वजनिक डोमेन में रखा जाना चाहिए।

राज्य वित्तपोषण के पक्ष में तर्क	**राज्य वित्तपोषण के विपक्ष में तर्क**
• राज्य द्वारा वित्तपोषण से दल और उम्मीदवारों में वित्त के सम्बन्ध में पारदर्शिता बढ़ जाती है, क्योंकि वित्तपोषण के साथ-साथ कुछ प्रतिबंध भी लगाए जा सकते हैं। • राज्य द्वारा वित्त पोषण से अमीर लोगों और अमीर माफियाओं के प्रभाव को सीमित किया जा सकता है, जिससे चुनाव प्रक्रिया को शुद्ध किया जा सके। • हालाँकि राज्य द्वारा वित्त पोषण दलों में आंतरिक लोकतंत्र की मांग करता है, जिससे महिलाओं तथा कमजोर वर्गों के प्रतिनिधित्व को प्रोत्साहित किया जा सके। • भारत में, उच्च स्तर की गरीबी के कारण, सामान्य नागरिकों से राजनीतिक दलों के लिए अधिक योगदान करने की उम्मीद नहीं की जा सकती है। इसलिए पार्टियां कॉरपोरेट घराने और अमीर व्यक्तियों द्वारा वित्तपोषण पर निर्भर करती हैं।	• राज्य वित्तपोषण के माध्यम से चुनाव में करदाताओं को उन राजनीतिक दलों या उम्मीदवारों का समर्थन करने के लिए विवश किया जाता है, जिनके विचारों से वे सहमत नहीं हैं। • राज्य के वित्तपोषण द्वारा स्थिरता को प्रोत्साहित किया जाता है जो स्थापित दलों या उम्मीदवारों को सत्ता में बनाए रखता है और नये दलों के लिए आगे की राह को कठिन बना देता है। • राज्य वित्तपोषण से राजनीतिक नेताओं और नागरिक समाज के बीच दूरियां बढ़ जाती हैं, क्योंकि पार्टियां पार्टी निधि जुटाने के लिए नागरिकों पर निर्भर नहीं रहती हैं। • राजनीतिक पार्टियां नागरिक समाज का हिस्सा होने की बजाय राज्य का अंग बन जाती हैं।

5.2.2. कॉरपोरेट फंडिंग में सुधार:

(Reforms in Corporate Funding)

सुर्ख़ियों में क्यों?

वित्त विधेयक 2017 के माध्यम से प्रक्रिया को और अधिक पारदर्शी बनाने के लिए राजनीतिक दलों को कम्पनियों द्वारा की जाने वाली फंडिंग के सम्बन्ध में सरकार ने अनेक परिवर्तन किए हैं।

1987 में भारत सरकार ने डाकघरों में **इंदिरा विकास पत्र** के नाम से धारक बांड जारी किये थे, जिनसे बांड धारकों को गोपनीयता का लाभ प्राप्त हो जाता था।

लेक्टोरल ट्रस्ट (निर्वाचन न्यास) – यह एक गैर-लाभकारी कम्पनी है। भारत में इसका गठन RPA 1951 की धारा 29 के अंतर्गत पंजीकृत राजनीतिक दलों के लिए स्वैच्छिक योगदान की व्यवस्थित प्राप्ति तथा संबंधित दलों के मध्य उन प्राप्तियों के वितरण के लिए किया गया था।

र्पोरेट जगत और राजनीतिक दल, इलेक्टोरल ट्रस्ट को वरीयता क्यों देते हैं?

- यह कॉर्पोरेट कंपनियों और उससे जुड़े लोगों को उनकी राजनीतिक पसंद के सार्वजनिक होने से बचाता है (गोपनीयता बनाएं रखना)।
- यह कम्पनियों को उन राजनीतिक पार्टियों के प्रतिशोध से भी बचा लेता है जिन्हें कंपनी ने कोई दान नहीं दिया है।
- यहाँ तक कि राजनीतिक पार्टियां भी गोपनीयता नहीं रखतीं।

पृष्ठभूमि

भारत में लम्बे समय से चुनावी फंडिंग में पारदर्शिता का अभाव चर्चा का विषय रहा है। कुछ ही समय पूर्व एक रिपोर्ट (एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स की रिपोर्ट) में यह दर्शाया गया है कि राजनीतिक दलों को अपनी आय का दो तिहाई अज्ञात स्रोतों से प्राप्त होता है।

कार्पोरेट फंडिंग को नियंत्रित करने वाले नियम:

- **कम्पनी अधिनियम 2013 की धारा 182:** इसमें कॉरपोरेट फंडिंग के लिए निम्नलिखित नियम निर्धारित किए गए हैं:
  - चन्दा देने वाली कम्पनी कम से कम तीन वर्ष पुरानी होनी चाहिए।
  - कंपनी विगत तीन लगातार वर्षों में अपने औसत शुद्ध लाभ का अधिकतम 7.5% ही दान कर सकती है।
  - इस प्रकार के चंदे को कम्पनी के प्रॉफिट एंड लॉस एकाउंट में दर्शाना होगा।
  - इस चंदे के लिए निदेशक मंडल की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक होगा।
  - जिस कम्पनी को इन नियमों के उल्लंघन का दोषी पाया जायेगा उस पर दंड आरोपित किया जाएगा तथा यह दंड चंदे की राशि का पांच गुना तक हो सकता है।
- **इलेक्टोरल ट्रस्ट स्कीम 2013** - इसमें इलेक्टोरल ट्रस्ट की स्थापना के सम्बन्ध में प्रावधान किए गए हैं।
  - इलेक्टोरल ट्रस्ट द्वारा राजनीतिक दलों के लिए अर्जित अंश के कम से कम 95% का दान करना आवश्यक होगा।
  - ऐसा न करने पर आय कर में **कोई छूट** प्राप्त नहीं होगी।
  - इलेक्टोरल ट्रस्ट की स्थापना करने वाली विभिन्न कम्पनियां हैं- वेदांता समूह, रिलायंस समूह, भारती समूह आदि।
- **जन प्रतिनिधित्व अधिनियम (RPA) की धारा 29B –** यह राजनीतिक दलों को किसी भी व्यक्ति या कम्पनी (सरकारी इकाई को छोड़कर) द्वारा दिए गए चंदे को स्वीकार करने के लिए अधिकृत करता है।
- **RPA की धारा 29C –** यह सभी राजनीतिक दलों के लिए अनिवार्य प्रावधान करता है कि प्रत्येक वित्तीय वर्ष में रिपोर्ट के माध्यम से उन व्यक्तियों या कम्पनियों के नामों को सार्वजनिक करें जिन्होंने 20,000 रुपये से अधिक का चन्दा दिया हो। ऐसा न करने वाले दल को आयकर अधिनियम, 1961 के तहत कर राहत से वंचित कर दिया जाएगा।
- **विदेशी अंशदान एवं विनिमयन अधिनियम (FCRA), 1976 की धारा 2(e) -** यह किसी भी **विदेशी संस्था** से चन्दा प्राप्त करने पर रोक लगाता है।

वित्त विधेयक 2017 द्वारा प्रस्तावित परिवर्तन:

- फंडिंग पर 7.5% (औसत शुद्ध लाभ पर) की सीमा को हटा दिया गया है।
- वार्षिक रिपोर्ट में व्यक्ति या कम्पनी के नामों को उजागर करने के लिए 20,000 रुपये की सीमा को घटा कर 2,000 कर दिया गया है।
- चंदे की व्यवस्था को और अधिक पारदर्शी बनाने के लिए अधिकृत बैंकों द्वारा जारी किए गए इलेक्टोरल बांड की खरीद के माध्यम से चंदा किया जा सकता है। इन्हें केवल चेक और डिजिटल भुगतान के द्वारा ही खरीदा जा सकता है।
- राजनीतिक दलों को आयकर रिटर्न भरना होगा और फंडिंग का रिकार्ड रखा जाएगा।
- कम्पनियों को अब उनके प्रॉफिट लॉस अकाउंट में चंदा प्राप्त करने वाले दल का नाम गुप्त रखने की अनुमति है, परन्तु चंदे की राशि का उल्लेख किया जाना आवश्यक है।
- FCRA में प्रावधान किया गया है, जो विदेशी चंदे को वैधता प्रदान करता है, यदि **शेयर पूँजी की नॉमिनल वैल्यू** FCRA 1999 या उसके बाद के नियमों एवं शर्तों के अंतर्गत विदेशी निवेश के लिए निर्दिष्ट सीमाओं के अन्दर हो। इस प्रावधान को 26 सितम्बर 2010 से ही प्रभावी माना जाएगा।

मुद्दे:

- जनता भारत की चुनावी प्रक्रियाओं में पारदर्शिता चाहती है। इलेक्टोरल बांड से प्रक्रिया का डिजिटलीकरण हो सकता है परन्तु इसके **गोपनीयता संबंधी सिद्धांत** चिंता का विषय हैं।
- 7.5% की सीमा को समाप्त करना (पूंजीगत लाभ के लिए राजनीतिक दलों को प्रसन्न करने की कंपनियों की इच्छा को नियंत्रित रखने के लिए किया गया था) शेयरधारक के लिए एक विरोधी कदम है। इस संबंध में **शेयरधारकों के विवाद निवारण तन्त्र** का कोई सुझाव नहीं दिया गया है।

VISION IAS

- इससे **कम्पनियों द्वारा लॉबिंग** की संभावना बढ़ जाती है। हालाँकि बड़े चंदों को अब 2000 रुपये के छोटे हिस्सों में बाँट दिया गया है लेकिन ऐसा करने से स्थितियां और **अधिक अपारदर्शी** हो सकती हैं।
- **इससे विदेशी संस्थाओं का प्रभाव** बढ़ सकता है और यह भारत के कल्याणकारी चरित्र को भी प्रभावित कर सकता है।

आगे की राह :

- अनेक लोगों का मत है कि डिजिटल माध्यम से चंदा दिए जाने से चुनावी फंडिंग में पारदर्शिता को बढ़ावा मिल सकता है।
- अब केवल **एकल चैनल के माध्यम** से धन उपलब्ध कराया जाएगा। स्पष्ट है कि अभी तक धन प्राप्ति के अनेक चैनल थे जिनकी निगरानी रखना काफी कठिन होता था।
- हालाँकि यह कदम काफी उद्देश्यपूर्ण है लेकिन व्यवहारिकता के धरातल पर यह कितना प्रभावी होगा यह इसके लागू होने के बाद ही पता चलेगा।

5.2.3. पेड न्यूज़ और चुनाव सुधार

(Paid News and Electoral Reforms)

सुर्ख़ियों में क्यों?

चुनाव आयोग ने मध्यप्रदेश के मंत्री नरोत्तम मिश्रा को चुनाव खर्च खातों में गलत विवरण दर्ज करने के कारण तीन साल के लिए अयोग्य घोषित कर दिया है। उनकी सदस्यता जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 10A के तहत रद्द की गई है।

पेड न्यूज़ क्या हैं ?

प्रेस काउंसिल ऑफ इंडिया के अनुसार *पेड न्यूज* द्वारा किसी उम्मीदवार के पक्ष में समाचार रिपोर्ट या लेख प्रकाशित कर नकद भुगतान या किसी कार्य के बदले उसका प्रचार किया जाता है। अभी तक *पेड न्यूज* को निर्वाचन अपराध की श्रेणी में शामिल नहीं किया गया है। हालाँकि उम्मीदवारों द्वारा चुनाव खर्च सीमाओं की अनदेखी करना "गंभीर चुनावी कदाचार" माना जाता है।

प्रभाव

- यह जनता को भ्रमित कर उसकी उचित निर्णय लेने की क्षमता को बाधित करती है।
- इससे मतदाताओं पर अनुचित प्रभाव पड़ता है और यह उनके सूचना के अधिकार को भी प्रभावित करती है।
- यह चुनाव खर्च कानून/सीमा की अवहेलना करती है।
- यह प्रतिस्पर्धा के समान अवसरों को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है।

चुनाव आयोग द्वारा उठाए गए कदम:

- 2010 के प्रारम्भ में चुनाव आयोग ने जिला और राज्य अधिकारियों को *पेड न्यूज* के मामलों की जांच, पहचान और रिपोर्ट करने के निर्देश जारी किया है।
- चुनाव आयोग ने *पेड न्यूज* की जाँच के लिए जिला और राज्य स्तर पर एक मीडिया प्रमाणन एवं निगरानी समिति (MEDIA CERTIFICATION & MONITORING COMMITTEE: MCMC) नियुक्त की है।
- MCMC अपने अधिकार क्षेत्र के अंदर ही विभिन्न ख़बरों में से राजनीतिक विज्ञापन की पहचान एवं जांच करेगी। MCMC, व्यय निरीक्षकों द्वारा इसे निर्दिष्ट *पेड न्यूज* संबंधी मामलों पर सक्रिय रूप से विचार भी करेगी।

विधि आयोग की सिफारिशें: चुनाव सुधार पर रिपोर्ट संख्या 255, 2015

- "समाचार के लिए भुगतान", "समाचारों के लिए भुगतान प्राप्त करना" और "राजनीतिक विज्ञापन" आदि की परिभाषाएं 'जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951' में शामिल की जायें।
- *पेड न्यूज* को चुनावी अपराध घोषित करते हुए दोषी की पात्रता को रद्द करने का प्रावधान किया जाये।
- सभी प्रकार के मीडिया के लिए प्रकटीकरण (DISCLOSURE) संबंधी प्रावधान; इस तरह के डिस्क्लोजर का दोहरा उद्देश्य है:
  - जनता को सामग्री की प्रकृति (भुगतान सामग्री या संपादकीय सामग्री) की पहचान करने में मदद करने के लिए;
  - उम्मीदवारों और मीडिया के बीच लेन-देन पर नजर रखने के लिए।
- राजनीतिक विज्ञापन में हितों के गैर-प्रकटीकरण से निपटने के लिए RPA में एक नया अनुभाग जोड़ा जाना चाहिए।

***पेड न्यूज़* से निपटने में चुनौतियाँ:**

- इस संबंध में पर्याप्त साक्ष्यों की कमी रहती है। नकदी या अन्य प्रकार के लेन-देन का रिकॉर्ड नहीं रखा जाता है और पूछताछ के

दौरान दोनों पक्षों द्वारा इसे नकार दिया जाता है।

- मीडिया उल्लंघन, किराए के विज्ञापन (surrogate advertisement) और गैर-सूचित विज्ञापन (unreported advertisements) को कभी-कभी MCMC द्वारा पेड न्यूज समझ लिया जाता है।
- समय सीमा काफी कम है। हालांकि, यदि इसका पालन नहीं किया जाता है, तो किसी विशेष चुनाव में पेड न्यूज़ पर खर्च का अनुमान लगाना संभव नहीं होगा।

आगे की राह

- जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में संशोधन के माध्यम से *'पेड न्यूज'* को चुनावी अपराध घोषित करना चाहिए।
- इस समस्या के नकारात्मक प्रभाव से बचने के लिए खर्च सीमा के मौजूदा तंत्र का उपयोग किया जाना चाहिए।
- इस समस्या के विरुद्ध संघर्ष में राजनीतिक दलों और मीडिया सहित अन्य हितधारकों का सहयोग लिया जाना चाहिए।
- इस विषय पर लोगो में और जागरूकता का प्रसार किया जाना चाहिए।

5.2.4. चुनावी परिदृश्य और मुफ्त उपहार

(Freebies in Election)

सुर्ख़ियों में क्यों?

- हाल के समय में, विभिन्न दलों के द्वारा अपने चुनावी घोषणा-पत्र में मुफ्त लैपटॉप, शिक्षा-ऋण माफी, मुफ्त पानी की आपूर्ति आदि सुविधाएं मुफ्त प्रदान करने का वादा किया जा रहा है।
- इस प्रवृत्ति के लगातार बढ़ते जाने ने सुप्रीम कोर्ट को वर्ष 2013 में हस्तक्षेप करने के लिए विवश कर दिया। न्यायालय ने राजनीतिक दलों के द्वारा अपने घोषणा-पत्र में शामिल किये जाने वाले वादों के संबंध में चुनाव आयोग को दिशा-निर्देश तैयार करने का निर्देश दिया ।

निर्वाचन आयोग के द्वारा आदर्श आचार संहिता (MCC) में धारा 8 को जोड़ा गया है, जिसके अनुसार :

- चुनाव घोषणा-पत्र में संविधान के आदर्शों के खिलाफ कुछ भी नहीं होना चाहिए और घोषणा-पत्र को आदर्श आचार संहिता की भावना के अनुरूप होना चाहिए।
- पारदर्शिता, समान अवसर और वादों की विश्वसनीयता के साथ ही यह अपेक्षा भी की जाती है कि घोषणा-पत्र का स्वरुप तार्किक हो अर्थात् इसमें किये गए वादों को पूरा करने के लिए वित्तीय साधनों और स्रोतों का भी जिक्र किया गया हो।
- मतदाताओं का भरोसा केवल उन वादों के माध्यम से जीता जाना चाहिए जिन्हें पूरा किया जाना संभव हो।

मुद्दे:

- आदर्श आचार संहिता कानून द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है। घोषणा-पत्र की सामग्री को सीधे नियंत्रित करने के लिए कोई अधिनियमन नहीं है।
- जन प्रतिनिधि कानून की धारा 123 रिश्वत को एक अपराध घोषित करता है लेकिन किसी पार्टी विशेष के द्वारा मतदान की किसी भी शर्त के बिना प्रत्येक व्यक्ति को मुफ्त वस्तुएं देने के वादे को रिश्वत के रूप में नहीं माना जा सकता।

लोकतंत्र पर मुफ्त उपहार देने का प्रभाव:

- यह चुनाव प्रक्रिया पर प्रभाव डाल सकता है और पार्टी विशेष के पक्ष में मतदाताओं को लुभा सकता है।
- सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि मुफ्त वस्तुएं प्रदान करने के वादे ने बहुत हद तक स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव प्रक्रिया को प्रभावित किया है तथा इसने समान प्रतिस्पर्धा को भी प्रभावित किया है।
- लेकिन एक राय यह है कि:
  - मतदाता को मूर्ख नहीं बनाया जा सकता है और इन मुफ्त वस्तुओं के माध्यम से मतदाताओं को आसानी से प्रभावित नहीं किया जा सकता। एक बार मतदाता के इन मुफ्त वादों के वित्तीय निहितार्थ को समझ लेने पर बहुत कम सम्भावना है कि तर्कहीन वादों के आधार पर वे किसी पार्टी को वोट देंगे।
  - मतदान की गोपनीयता सुनिश्चित करती है कि उपहार, मतदाताओं के निर्णयन को प्रभावित नहीं करें। वास्तव में, मुफ्त वस्तुएं प्रदान करने का वादा करने वाला राजनीतिक दल दुविधा की स्थिति में होता है क्योंकि यह समझ पाना मुश्किल है कि मतदाताओं के द्वारा किसके लिए मतदान किया गया है।
  - कुछ प्रयोगों से भी स्पष्ट होता है कि मुफ्त वस्तुएं प्रदान करने के वादे और किसी पार्टी के लिए वोट करने के बीच कोई संबंध नहीं है।

VISION IAS

अर्थव्यवस्था पर
- यह सरकारी खजाने पर भारी बोझ डालता है। क्योंकि पार्टी के द्वारा सत्ता में आने पर राजकोष से भारी व्यय किया जाता है।
- राज्यों पर कर्ज का बोझ कई गुना बढ़ जाता है और दृष्टव्य है कि कुछ राज्यों में राजस्व घाटे का आकार काफी बड़ा है।
- यह आवश्यक सेवाओं और विकास कार्यक्रमों से संसाधनों को विमुख (डायवर्ट) करता है।

लोगों के कल्याण पर
- स्कूल की लड़कियों के लिए साइकिल वितरण योजना से स्कूल छोड़ने की दर कम हुई है और लैपटॉप देने से छात्रों के लिए अवसर बढ़े हैं।
- इन मुफ्त वस्तुओं के वितरण में वास्तव में जमीनी स्तर पर बहुत कम भ्रष्टाचार व्याप्त है, सरकार द्वारा जारी कल्याणकारी योजनाओं में इसे देखा जा सकता है।
- लेकिन यह सरकार के समाज कल्याण के दायित्व को मुफ्त वस्तुएं प्रदान करने तक सीमित कर देता है जबकि शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छता जैसी बुनियादी सुविधाएं उपेक्षित हो जाती हैं।

प्रशासन पर
- यह कुछ मामलों में निर्णय लेने के कार्य को सहज बनाता है जिसके परिणाम स्वरुप जनता को बेहतर सेवा प्रदान करने में सहायता मिलती है।
- लेकिन यह हमारी राजनीति के लोकतांत्रिक प्रकृति के खिलाफ है।

आगे की राह:
- यदि पार्टी के द्वारा कुछ वादा किया गया है तो इसे कार्यान्वित करने की योजना और आवश्यक धन के स्रोत का भी स्पष्ट संकेत किया जाना चाहिए।
- चुनाव घोषणा-पत्रों से सम्बंधित प्रावधानों को समाहित करने वाला एक कानून लाया जा सकता है।

5.3. बहु चरणीय चुनाव

(Multi Phase Polls)

सुर्खियों में क्यों?
- 5 राज्यों में मतदान के बाद, भारत के मुख्य चुनाव आयुक्त (CEC) ने कहा है कि बहु-चरणीय चुनावों का आयोजन निकट भविष्य में भी जारी रहेगा।

आवश्यकता
- संविधान हमें स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने का अधिकार प्रदान करता है। एक चरण में होने वाले चुनाव को मॉनिटर करना मुश्किल हो सकता है तथा यह अनुचित गतिविधियों को जन्म दे सकता है।

जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 (RPA ,1951)
- धारा 126 - मतदान के शुरू होने से 48 घंटे पहले प्रिंट या टेलीविज़न के माध्यम से चुनाव संबंधी सामग्री का प्रदर्शन प्रतिबंधित करता है।
- यह केवल उस निर्वाचन क्षेत्र के लिए वैध है जिसमें मतदान प्रारंभ हो चुका हो। बहु-चरणीय चुनावों में अन्य क्षेत्रों के मतदाताओं के संबंध में ये प्रावधान लागू नहीं होंगे।

महत्व
- मतदान कर्मियों, मतदान केंद्रों और मतदान सामग्री की सुरक्षा सहित चुनावों के संचालन में विस्तृत सुरक्षा प्रबंधन शामिल है।
- बहु-चरणीय चुनाव, सुरक्षा से संबंधित जनबल की कमी की किसी भी चुनौती का सामना करने में सहायक हैं।
- यह व्यवस्था चुनाव कराने वाली एजेंसियों के बीच समन्वय तथा निगरानी व्यवस्था के सुधार में सहायक है।
- बहु-चरणीय चुनाव में चुनाव कराने की लागत कई भागों में बट जाती है, इस प्रकार एक बार में ही समूचे खर्च को किए जाने की बाध्यता से उत्पन्न समस्या का सामना नहीं करना पड़ता।
- बहु-चरणीय चुनाव में हिंसा की घटनाओं तथा निष्पक्ष चुनाव के लिए हानिकारक गतिविधियों को रोकना आसान होता है। इस प्रकार मतदाताओं की अधिकतम भागीदारी संभव हो पाती है।

आलोचना
- बहु-चरणीय चुनावों को स्वतंत्र और निष्पक्ष मतदान के लिए एक बाधा माना जाता है क्योंकि :-

VISION IAS

- RPA 1951 की धारा 126 के कारण एक क्षेत्र में चुनाव प्रचार बंद होने के बाद भी प्रचार कार्यक्रम दूसरे क्षेत्र में जारी रहता है।
- यह परोक्ष रूप से अन्य निर्वाचन क्षेत्रों के मतदाताओं को प्रभावित करता है, इस प्रकार कानून की भावना (स्प्रिट ऑफ़ द लॉ) का उल्लंघन होता है।

- बहु-चरणीय चुनावों के कारण लम्बे समय तक आचार संहिता प्रभावी रहती है। इससे चुनावी राज्यों में नई विकास परियोजनाओं के प्रारम्भ होने में बाधा पहुंचती है।
- विभिन्न चरणों में आयोजित चुनावों में केंद्रीय पुलिस बलों को प्राथमिकता दिए जाने के कारण राज्य पुलिस का प्राधिकार कमजोर हो जाता है। इस आधार पर बहुत लोगों द्वारा बहु-चरणीय चुनावों का विरोध किया जाता है।

आगे की राह

- यद्यपि बहु-चरणीय चुनावों की सीमाएं हैं, फिर भी, सीमित वित्तीय और मानव संसाधनों के वर्तमान परिदृश्य में, बहु-चरणीय चुनाव स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव के संचालन की प्रक्रिया में उत्पन्न होने वाली चुनौतियों को दूर करने का एक मार्ग है।

5.4. एक साथ चुनाव

(Simultaneous elections)

सुर्खियों में क्यों?

प्रधानमंत्री ने लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के चुनाव एक साथ कराने के विचार पर फिर से जोर दिया है।

आवश्यकता क्यों?

गवर्नेंस

- इससे विभिन्न सरकारों को शासन के लिए लगभग पांच वर्षों तक समर्पित रूप से कार्य करने की सुविधा प्राप्त होगी। क्योंकि लगातार आयोजित होने वाले चुनावों के कारण चुनाव जीतना प्रायः सभी नेताओं की पहली प्राथमिकता बन जाती है।
- परिणामस्वरूप शासन के संचालन और लोगों की शिकायतों के समाधान की प्रक्रिया में नेताओं की भूमिका गौण हो जाती है तथा नौकरशाही प्रधान हो जाती है।

विधायी कामकाज

- विधानसभाओं / लोकसभा में गतिरोध की स्थिति उत्पन्न होती है क्योंकि हरेक दल सुर्खियों में रहना चाहता है।
- निरंतर चुनावों के दुष्चक्र ने विधायी स्थिरता को प्रभावित किया है। यदि स्थानीय चुनावों को भी शामिल कर लिया जाए तो हमारे देश में हमेशा कोई न कोई चुनाव कार्य चलता रहता है।

अर्थव्यवस्था

- इससे लगातार होने वाले चुनावों का भारी आर्थिक बोझ कम होगा।
- आदर्श आचार संहिता के लागू होने से नई कल्याणकारी योजनाओं और अन्य सरकारी उपायों की घोषणा आम तौर पर नहीं हो पाती है जिससे आर्थिक विकास की गति में बाधा उत्पन्न होती है।

चुनौतियाँ

- इस व्यवस्था को व्यवहार में प्राप्त करना लगभग असंभव है क्योंकि राजनीतिक वास्तविकताओं के कारण एक विधानसभा असामयिक ढंग से भंग होते रहती है। समय पूर्व विघटन, जो एक साथ चुनाव के सिद्धांत उल्लंघन है, कई तरीकों से संभव हो सकता है यथा:
  - प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री राष्ट्रपति या राज्यपाल को, जैसा भी सन्दर्भ हो, चुनावी लाभ हासिल करने के लिए समयपूर्व विघटन की सलाह दे सकते हैं।
  - सरकार के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पास करके या सरकार के विश्वास प्रस्ताव को गिराकर।
  - केंद्र सरकार के द्वारा अनुच्छेद 356 के तहत अपनी शक्तियों का दुरुपयोग कर कई बार विपक्षी दलों द्वारा शासित राज्यों में राष्ट्रपति शासन लगाया जाता रहा है तथा समय से पहले विधानसभाओं को भंग कर चुनावी स्थिति उत्पन्न कर दी जाती है।
- अनुच्छेद 85 और अनुच्छेद 174 के अनुसार लोक सभा और विधान सभाओं के चुनाव इनके विघटन से छह महीने के भीतर आयोजित किया जाना अनिवार्य है। यदि चुनाव तय अवधियों में ही आयोजित किये जाते हैं तो इस प्रावधान का अनुपालन नहीं हो पायेगा। इसके अलावा, अगर चुनाव विघटन के छह महीने के भीतर आयोजित नहीं किये जाते हैं तो यह लोकतंत्र का मखौल उड़ाने जैसा होगा।

VISION IAS

- संविधान निर्माताओं के द्वारा एक विशिष्ट प्रकार की संघीय राज्य व्यवस्था की परिकल्पना की गयी है। अतः बहुदलीय प्रणाली के साथ चुनावी व्यवस्था लोकप्रिय संप्रभुता की इच्छा की सर्वाधिक मौलिक अभिव्यक्ति है।
- लगातार होने वाले चुनाव राजनेताओं को मतदाताओं के पास आने तथा जनता के प्रति जवाबदेह बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं।
- विभिन्न स्तरों पर चुनावों के परिणाम 'जनता की नब्ज' टटोलने में सहायक होते हैं तथा राजनेताओं को बदली हुई परिस्थितियों में अपनी नीतियों और कार्यक्रमों में बदलाव करने में सहायता करते हैं।
- मतदाताओं के समक्ष स्थानीय और राष्ट्रीय मुद्दों के मिश्रण की स्थिति उत्पन्न हो सकती है तथा इन परिस्थितियों में मतदाता राष्ट्रीय मुद्दों की अपेक्षा क्षेत्रीय और स्थानीय मुद्दों को अधिक महत्व दे सकते हैं।
- एक ही बार में पूरे देश में एक साथ चुनाव का संचालन करने के लिए सुरक्षा कर्मियों की कमी, चुनावी और प्रशासनिक मशीनरियों तथा अन्य आवश्यक संसाधनों की अपर्याप्त उपलब्धता भी इस सन्दर्भ में एक बड़ा मुद्दा है।

विश्व से उदाहरण:

विधि आयोग ने जर्मनी के संविधान के तर्ज पर अविश्वास प्रस्ताव (लोक सभा के कार्य संचालन नियमों के नियम 198) के नियम में संशोधन करने की सिफारिश की है:

- इस प्रणाली में विपक्षी दल का नेता अविश्वास प्रस्ताव और विश्वास प्रस्ताव दोनों लाता है, और यदि ये दोनों प्रस्ताव पारित हो जाते हैं तो वह नया नेता बन जाता है।
- इस प्रकार लोकतंत्र के मूलभूत सिद्धांत को कमजोर किए बगैर समय से पहले इसके भंग होने की प्रथा को रोका जाएगा। यह सदन में सरकार की सामूहिक उत्तरदायित्व की धारणा के साथ संगत भी है जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 75 (3) में उल्लेख किया गया है।
- एक साथ चुनाव **दक्षिण अफ्रीका** और **स्वीडन** में भी सफलतापूर्वक आयोजित किये जा रहे हैं।

संसदीय पैनल की सिफारिशें

- वैसी विधान सभाओं के चुनाव जिनका कार्यकाल लोकसभा के आम चुनाव के छह महीने पूर्व या पश्चात् समाप्त होने वाला हो उनको एक साथ कराया जाना चाहिए।
- चुनाव दो चरणों में होना चाहिए। पहले चरण में, लोकसभा के कार्यकाल के मध्य में लगभग आधी विधान सभाओं का चुनाव होना चाहिए और शेष चुनाव लोकसभा की अवधि की समाप्ति पर एक साथ होना चाहिए।·
- कार्यकाल के पूर्ण होने से पूर्व ही राज्य विधान सभाओं के साथ राज्यों/लोकसभा के चुनाव कराने के लिए सदन द्वारा समय पूर्व आम चुनाव हेतु प्रस्ताव या अविश्वास प्रस्ताव पारित किया जाना चाहिए।

आगे की राह

यद्यपि पंचायतों, विधानसभाओं एवं लोकसभा का चुनाव एक साथ संभव नहीं है किंतु यह वांछनीय है। चुनाव प्रक्रिया को और अधिक पारदर्शी, मितव्ययी, शांतिपूर्ण एवं तीव्र बनाया जाना चाहिए। इस हेतु हमें कुछ आसानी से अपनाए जा सकने वाले समाधानों के विषय में विचार करना चाहिए:

- चुनावों में धनबल की भूमिका को सीमित करना आवश्यक है। इसके लिए राजनीतिक दलों के खर्चो पर सीमा निर्धारित करना एवं राजनीतिक दलों को राजकोष से सहायता प्रदान करना चाहिए।
- सभी प्रकार के निजी, विशेषकर कार्पोरेट फण्ड पर प्रतिबन्ध हेतु विचार करना चाहिए।
- चुनावों को एक दिन में संपन्न कर चुनाव प्रक्रिया में लगने वाले समय को आधा किया जा सकता है।

5.5. वापस बुलाने का अधिकार

(Right to Recall- RTR)

वापस बुलाना मूल रूप से एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत निर्वाचित अधिकारियों को उनके सामान्य कार्यकाल की समाप्ति से पहले हटाने की शक्ति मतदाताओं को प्राप्त होती है।

VISION IAS

तालिका 1: भारत में नगर निगम स्तर पर वापस बुलाने के अधिकार हेतु प्रावधान

मध्य प्रदेश, 2000

- मध्यप्रदेश नगरपालिका निगम अधिनियम, 1956 की धारा 24 एवं मध्य प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1961 की धारा 47

छत्तीसगढ़, 2011

- छत्तीसगढ़ नगर पालिका अधिनियम 1961 की धारा 47 (अध्यक्ष को वापस बुलाना)

राजस्थान, 2011

- राजस्थान नगर पालिका अधिनियम, 2009 की धारा 53 को 2011 में राजस्थान नगर पालिका (संशोधन) विधेयक, 2011 के रूप में संशोधन किया गया था।

बिहार, 2007

- बिहार नगरपालिका अधिनियम , 2007 की धारा 17

स्रोत: राज्य चुनाव आयोगों के आंकड़े।

RTR की आवश्यकता क्यों?

- **जवाबदेही बढ़ाना** - वर्तमान में, यदि मतदाता अपने निर्वाचित प्रतिनिधि से अप्रसन्न हैं तो इस हेतु कोई उपाय विद्यमान नहीं है।
- **अंतर्राष्ट्रीय अनुभव** – कनाडा के एक प्रान्त में यह विद्यमान है। संयुक्त राज्य अमेरिका में कुछ राज्य विशिष्ट आधारों (जैसे कदाचार या भ्रष्टाचार) पर वापस बुलाने की अनुमति देते हैं।
- **तर्क और न्याय** - दुष्कर्मों में संलग्न होने या अपने दायित्वों के निर्वहन में विफल होने पर प्रतिनिधियों को चुनने की तरह ही उन्हें हटाने का भी अधिकार लोगों को प्राप्त होना चाहिए।
- **धनशक्ति की भूमिका को कम करना** - यह चुनाव अभियान में किए जाने वाले व्यय को सीमित कर सकता है, क्योंकि नैतिक रूप से डांवाडोल उम्मीदवारों द्वारा वापस बुलाए जाने के जोखिम पर विचार करते हुए व्यय कम किया जाएगा।

स्थानीय स्तर पर RTR से संबंधित मुद्दे

मध्य प्रदेश में वापस बुलाने के अधिकार से संबंधित अनुभवों (जहां यह पिछले 16 वर्षों से संचालित है) ने सुधार के साथ जुड़ी हुई कुछ कार्यात्मक समस्याओं को प्रकट किया है, जैसे -

- वापस बुलाने के आधार मनमाने थे।
- जिला कलेक्टर द्वारा हस्ताक्षर सत्यापन प्रक्रिया असंतोषजनक थी।
- वापस बुलाने के बाद होने वाले चुनाव में भाग लेने वाले नए मतदाताओं ने आम चुनाव में मतदान नहीं किया था।

मध्य प्रदेश में, 2000 के बाद से नगर निगम स्तर पर वापस बुलाने संबंधी 33 चुनाव आयोजित किए गए थे, जहां पदाधिकारियों को 17 बार वापस बुलाया गया था।

राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर RTR से संबंधित संभावित चुनौतियाँ

- **स्थायित्व का अभाव** - यह देश को अस्थिर कर सकता है क्योंकि जहाँ भी कोई असंतोष उत्पन्न होगा लोग वापस बुलाना आरम्भ कर देंगे।
- **राजनीतिक उपकरण** – अनभिप्रेत (unintended) राजनीतिक संदेश उत्पन्न करने में इसका दुरूपयोग किया जा सकता है विशेष रूप से कश्मीर और उत्तर-पूर्वी राज्यों जैसे स्थानों में जहां लोग पहले से ही अलगाव अनुभव करते हैं।
- **चुनावी अनिच्छा-** उम्मीदवारों को वापस बुलाने/ खारिज करने एवं एक और चुनाव होने से चुनावी अनिच्छा उत्पन्न हो सकती है और मतदान हेतु आने वाले मतदाताओं की संख्या में कमी हो सकती है।

आगे की राह

- RTR को लागू किया जा सकता है लेकिन पर्याप्त सुरक्षा उपायों के साथ। उदाहरण के लिए RTR हेतु प्रस्ताव चुनाव के केवल 2 वर्ष के उपरांत ही आरंभ किया जाना चाहिए, इत्यादि।
- स्थानीय स्तर पर समृद्ध अनुभवों से सीख लेकर हमारी आवश्यकताओं के अनुरूप उपयुक्त विशिष्ट मॉडल विकसित करने की आवश्यकता है जो यहां की राजनीतिक अस्थिरता को संकटग्रस्त न करे।

VISION IAS

5.6. वोटर वेरिफाइबल पेपर ऑडिट ट्रेल (VVPAT)

सुर्ख़ियों में क्यों?

- 2019 में होने वाले लोकसभा चुनाव में EVMs (इलेक्ट्रानिक वोटिंग मशीन) में उपयोग किये जाने हेतु **वोटर वेरिफाइबल पेपर ऑडिट ट्रेल्स (Voter Verifiable Paper Audit Trails: VVPATs)** की 16.15 लाख इकाईयां खरीदने के लिए केंद्र सरकार ने **चुनाव आयोग** को 3,174 करोड़ रुपये के आवंटन की स्वीकृति दे दी है।
- यह निर्णय 2017 के हाल के विधानसभा चुनावों के दौरान EVMs के साथ छेड़छाड़ किए जाने के आरोपों के बीच लिया गया।

पृष्ठभूमि

- **1982 में पहली बार केरल विधानसभा चुनाव में** EVM का प्रयोग किया गया था, जबकि **लोकसभा चुनाव के लिए पहली बार इसका प्रयोग 1992** में किया गया था।
- EVMs के प्रयोग से मतदान की प्रक्रिया सरल हो गई है। इससे चुनावी धांधली जैसे- मतपत्रों की हेरा-फेरी, मतपत्र पेटिका को क्षति पहुँचाना आदि में भारी कमी आई है।
- पेपर ट्रेल के साथ EVM की संपुष्टि के लिए कुछ निर्वाचन क्षेत्रों में VVPATs का भी उपयोग किया गया है।
- **सुब्रह्मण्यम स्वामी बनाम चुनाव आयोग, 2013** मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि VVPATs 'निःशुल्क और निष्पक्ष चुनावों के लिए अपरिहार्य हैं' और साथ ही, इसने चुनाव आयोग को चरणबद्ध तरीके से VVPATs के प्रयोग करने का निर्देश दिया था।

लाभ

- चुनाव प्रक्रिया में VVPATs मशीन के प्रयोग से कागजी ऑडिट द्वारा EVM परिणामों की क्रॉस-चेकिंग या दोबारा जाँच संभव हो जाती है, जिससे स्वदेश-उत्पादित मशीनों की जवाबदेही में एक और स्तर जुड़ जाता है।
- यह मत बदलने या नष्ट करने के प्रयासों में अतिरिक्त बाधा के रूप में कार्य करता है।

5.7. NOTA

NOTA क्या है?

- इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीनों (EVM) पर उपलब्ध प्रत्याशियों की सूची में NOTA भी एक विकल्प है। यदि कोई मतदाता किसी चुनाव में राजनीतिक दलों द्वारा प्रस्तुत किये गये किसी भी प्रत्याशी से संतुष्ट नहीं है तो वह NOTA के माध्यम से अपना असंतोष दर्ज करा सकता है।
- यह नकारात्मक मतदान का एक रूप है।
- NOTA **गोपनीयता के अधिकार** की अभिव्यक्ति है।
- इसे अनुच्छेद 19 (अभिव्यक्ति और भाषण की स्वतन्त्रता) के भाग के एक रूप में भी देखा जाता है।
- यह राइट टू रिजेक्ट (अस्वीकृत करने के अधिकार) के समान प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में यह उससे भिन्न है।

नियम 41(2): यदि कोई मतदाता मतपत्र प्राप्त करने के पश्चात इसका उपयोग न करने का निर्णय करता है तो वह उसे पीठासीन अधिकारी को वापस कर देगा और मतपत्र वापस आ जायेगा। इस प्रकार के मतपत्र के काउंटरफॉइल (counterfoil) पर पीठासीन अधिकारी द्वारा **"वापस किया गया: रद्द किया गया (Returned: cancelled)"** लिखकर उसे चिन्हित कर लिया जायेगा।

नियम 41(3): इस प्रकार की स्थितियों में रद्द किये गये सभी मतपत्रों को एक अलग पैकेट में रखा जायेगा।

नियम 49(O)- मतदाता द्वारा मतदान न करने का निर्णय: यदि कोई मतदाता, मतदाता सूची क्रमांक फॉर्म 17A में अपना नाम दर्ज होने तथा अपने हस्ताक्षर या अंगूठे का निशान लगाने के पश्चात, मतदान न करने का निर्णय करता है तो, उक्त फॉर्म 17 में पीठासीन अधिकारी इस आशय की टिप्पणी दर्ज करेगा और उस टिप्पणी के समक्ष मतदाता के हस्ताक्षर या अंगूठे का निशान लिया जायेगा। **(गोपनीयता के अधिकार का उल्लंघन)।**

पृष्ठभूमि:

- 2001 में भारतीय चुनाव आयोग ने विधि और न्याय मंत्रालय के सचिव को एक पत्र लिखा कि वे राइट टू रिजेक्ट के सम्बन्ध में गोपनीयता के गम्भीर दोषों को दूर करें। परन्तु इस सम्बन्ध में कोई कार्रवाई नहीं की गयी।
- 2013 में सर्वोच्च न्यायालय ने पीपल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम यूनियन ऑफ़ इंडिया के निर्णय में **चुनाव नियमों की धारा 41(2), 41(3) और 49(O)** को निरस्त कर दिया।
- अधिकारियों को EVM **में उपरोक्त में से कोई नहीं** (None Of The Above: **NOTA**) को लागू करने और उसके सम्बन्ध में जागरूकता का प्रसार करने का निर्देश दिया गया।
- भारतीय संसद में 'निगेटिव वोटिंग' पहले से ही काफी प्रचलित है।

महत्त्व:

- यह अमान्य मतों की गोपनीयता बनाये रखने में सहायता करता है।
- नकारात्मक मतदान उन लोगों को प्रोत्साहित करेगा जो किसी भी प्रत्याशी से संतुष्ट नहीं हैं। वे इसके द्वारा अपनी राय व्यक्त कर सभी प्रत्याशियों को अस्वीकार कर सकेंगे।
- यह ऐसे फर्जी मतदान को रोकने में सहायता करेगा जो विरोधस्वरूप मतदान न करने वाले मतदाताओं के स्थान पर अन्य मतदाताओं द्वारा अवैध रूप से कर दिया जाता है।
- NOTA मतदान का उच्च अनुपात राजनीतिक दलों पर निष्ठावान प्रत्याशियों को नामांकित करने का दबाव बनाता है।

भारतीय राजनीति में NOTA:

- मतदाता केवल प्रत्याशी को अस्वीकार करने के लिए ही NOTA का उपयोग नहीं कर रहे हैं बल्कि राजनीतिक व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्ट आचरण एवं अन्य विसंगतियों के प्रति अपना विरोध दर्ज कराने के लिए भी इसका उपयोग कर रहे हैं।
- उदाहरण के लिए, वामपंथी उग्रवाद को झेल रहे राज्यों के क्षेत्रों में अपनी निराशा दिखाने के लिए NOTA के अत्यधिक प्रयोग में भी यही रुझान दिखता है।

चिंताएँ:

- NOTA का चुनाव परिणामों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि कितने नकारात्मक मत दिए गए हैं। जिस प्रत्याशी को सबसे अधिक मत प्राप्त होते हैं वही विजयी घोषित किया जाता है।
- कुछ प्रश्न अभी भी अनुत्तरित हैं, जैसे- क्या होगा यदि 50% से अधिक मतदाता NOTA का विकल्प चुनते हैं? ऐसी कमियों को उपयुक्त नियमों/कानूनों द्वारा दूर किया जाना चाहिए।
- NOTA केवल राजनीतिक दलों पर अच्छे प्रत्याशी नामांकित करने के लिए दबाव डालने की एक प्रणाली के रूप में कार्य करता है। नकारात्मक मतदान की इस व्यवस्था के बाद भी दलों द्वारा उनके प्रत्याशियों का चयन उनकी लोकप्रियता के आधार पर होता है, उनकी सत्यनिष्ठा के आधार पर नहीं।

आगे की राह:

लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में जन भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए NOTA एक महत्त्वपूर्ण कदम है। परन्तु एक उत्तरदायी लोकतंत्र की ओर बढ़ना भी आवश्यक है जहाँ इस प्रकार के विकल्प की आवश्यकता ही न हो और मतदाताओं को दिए गये विकल्प ही पर्याप्त रूप से प्रतिस्पर्धी हों।

5.8. ECI से सम्बंधित मुद्दें

(Issues Related To ECI)

5.8.1. निर्वाचन आयोग को अवमानना के संबंध में शक्तियां

(Contempt Powers to EC)

सुर्ख़ियों में क्यों?

निर्वाचन आयोग (EC) ने कानून मंत्रालय से निर्वाचन से संबंधी कानूनों में संशोधन करने का अनुरोध किया है। इस संशोधन के माध्यम से निर्वाचन आयोग द्वारा निराधार आरोप लगाने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध *कंटेम्प्ट ऑफ़ कोर्ट एक्ट* के प्रयोग की शक्तियों की भी मांग की गई है।

VISIONIAS

इन शक्तियों के पक्ष में तर्क

- **अंतर्राष्ट्रीय उदाहरण-** अनेक देशों (जैसे: केन्या, पाकिस्तान) के निर्वाचन प्रबंधन निकाय को अवमानना कार्यवाही प्रारंभ करने की प्रत्यक्ष शक्ति प्राप्त है।
- **विश्वसनीयता पर प्रभाव -** इस तरह के आरोप महत्वपूर्ण लोकतांत्रिक प्रक्रिया के संरक्षक के रूप में निर्वाचन आयोग की विश्वसनीयता को प्रभावित करते हैं।

इन शक्तियों के विपक्ष में तर्क

- **पारदर्शिता की आवश्यकता-** गुप्त मतदान के संरक्षक निकाय को ईमानदारी और निष्पक्षता का अपना रिकॉर्ड बनाए रखने के लिए अवमानना शक्तियों के बजाय पारदर्शिता का चयन करना चाहिए।
- **अलोकतांत्रिक -** प्रतिस्पर्धा निर्वाचन प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है। इसलिए आलोचना का दमन लोकतांत्रिक प्रक्रिया को नकारात्मक रूप से प्रभावित करेगा।
- **अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के खिलाफ -** इसी कारण से संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा जैसे लोकतान्त्रिक देशों ने निर्वाचन आयोग को अवमानना के विरुद्ध अधिकार नहीं दिया है।
- **पूर्व में भी अस्वीकृत-** तीन दशक पहले निर्वाचन सुधारों पर गठित दिनेश गोस्वामी समिति ने निर्वाचन आयोग के इस प्रस्ताव को खारिज कर दिया था।
- **जनता की संतुष्टि सर्वोच्च है -** निर्वाचन आयोग को हर राजनेता को संतुष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। इसे सार्वजनिक विश्वास और निष्पक्षता की प्रतिष्ठा प्राप्त है। इसे सिर्फ जनता तक पहुँचने और पारदर्शी ढंग से प्रक्रिया की व्याख्या करने की जरूरत है।
- **दुरुपयोग की संभावना-** भविष्य में उचित आलोचना का दमन हो सकता है। हाल के दिनों में न्यायपालिका को प्राप्त शक्तियों पर भी प्रश्न चिन्ह उठे हैं।

5.8.2. सरकारी नियन्त्रण से स्वतंत्रता

(Independence from Government)

सुर्ख़ियों में क्यों?

- सरकार के साथ हाल ही में हुई एक बैठक में भारत निर्वाचन आयोग (ECI) द्वारा सरकारी नियन्त्रण से पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग की गयी है।
- वर्तमान समय में केवल मुख्य चुनाव आयुक्त को ही कार्यकाल की सुरक्षा प्राप्त है।
- इसके अतिरिक्त इसका बजट संचित निधि पर भारित व्यय नहीं होता। अतः इसकी मदों पर संसद द्वारा मतदान किया जाता है।

चुनाव आयोग द्वारा की गयी अन्य मांगें:

संवैधानिक सुरक्षा:

- निर्वाचन आयोग ने अपने तीनों सदस्यों के लिए संवैधानिक संरक्षण की मांग की है जो वर्तमान में केवल मुख्य निर्वाचन आयुक्त को ही प्राप्त है। दो अन्य चुनाव आयुक्तों को सरकार द्वारा मुख्य चुनाव आयुक्त की सिफारिश पर कभी भी पद मुक्त किया जा सकता है।

स्वतंत्रता तथा वित्तीय स्वायत्तता:

- निर्वाचन आयोग द्वारा मांग की गई है की कानून द्वारा या सरकार के अन्य किसी प्रस्ताव के द्वारा यह प्रावधान किया जाए कि सबसे वरिष्ठ चुनाव आयुक्त को स्वत: ही मुख्य चुनाव आयुक्त के पद पर पदोन्नत किया जाए। जिसके माध्यम से अन्य चुनाव आयुक्तों में सुरक्षा की भावना उत्पन्न की जा सके और उन्हें मुख्य चुनाव आयुक्त की भांति ही कार्यकारी हस्तक्षेप से सुरक्षा प्रदान की जा सके।
- इसने कानून मंत्रालय से पूर्ण वित्तीय स्वायत्तता की मांग की है। ECI ने मांग की है कि CAG और UPSC की भांति, उसके बजट को संसद द्वारा मतदान के माध्यम से अनुमोदित किये जाने की वर्तमान प्रक्रिया के स्थान पर संचित निधि पर भारित किया जाना चाहिए।
- इसने अपने लिए एक स्वतंत्र सचिवालय का भी प्रस्ताव दिया है, जिसके अंतर्गत इसे अपने अधिकारियों की नियुक्ति के लिए DoPT पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। यदि विधि मन्त्रालय द्वारा इसकी अनुमति प्राप्त हो जाती है तो निर्वाचन आयोग स्वयं अपने भर्ती नियम बनाने और अपने अधिकारियों को शार्टलिस्ट करने और नियुक्त करने के लिए स्वतंत्र होगा। यह रोजगार बाजार से सक्षम पेशेवरों और विशेषज्ञों को आकर्षित कर सकेगा।

VISION IAS

5.8.3. ECI द्वारा सुझाये गये अन्य सुधार

(Other Reforms Demanded by ECI)

- भारत निर्वाचन आयोग (ECI) द्वारा प्रिंट मीडिया को जन प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 126 के अंतर्गत सम्मिलित किये जाने की मांग की गई है। इस धारा के अंतर्गत इलेक्ट्रॉनिक मीडिया (टीवी, रेडियो) पर मतदान समाप्त होने के समय से 48 घंटे पूर्व की निर्धारित अवधि के दौरान किसी राजनीतिक दलों के विज्ञापनों को प्रकाशित करने पर रोक लगायी गई है। हाल ही में इसमें इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साथ ही सोशल मीडिया को भी शामिल किया गया है।
- ECI ने धन बल के प्रभाव को सीमित करने के लिए जन प्रतिनिधित्व अधिनियम में, चुनावों को स्थगित या रद्द करने की विशिष्ट शक्तियों को सम्मिलित करते हुए, संशोधन की मांग की है। वर्तमान समय में इस अधिनियम में इस विषय से सम्बंधित कोई विशेष प्रावधान शामिल नहीं है। निर्वाचन आयोग का मत है कि, आयोग को संविधान के अनुच्छेद-324 के अंतर्गत असाधारण शक्तियों का उपयोग केवल कुछ ही अवसरों पर करना चाहिए। निर्वाचन आयोग ने अनुच्छेद-324 का उपयोग, मुख्यमंत्री की मृत्यु के पश्चात् चेन्नई के RK नगर निर्वाचन क्षेत्र में निर्धारित उप-चुनाव को रद्द करने के लिए किया था।

5.9 राष्ट्रीय दल की स्थिति की समीक्षा

(Review of Status of National Party)

सुर्ख़ियों में क्यों?

- भारत निर्वाचन आयोग (EC) ने अखिल भारतीय तृणमूल कांग्रेस (TMC) को राष्ट्रीय दल का दर्जा प्रदान कर दिया है। यह सातवाँ ऐसा दल बन गया है, जो पूरे देश में अपने चिन्ह पर लोक सभा और देश भर की विधान सभाओं में चुनाव लड़ सकता है।
- चुनाव चिन्ह (आरक्षण एवं आवंटन) आदेश में संशोधन किया गया।

चुनाव आयोग (ECI) द्वारा हाल ही में किये गये परिवर्तन:

- चुनाव आयोग के संशोधित नियमों के अंतर्गत, राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता प्रदान करने के लिए किसी दल के एक चुनाव में प्रदर्शन के स्थान पर अब निरंतर दो लोकसभा या विधान सभाओं के प्रदर्शन पर ही विचार किया जायेगा।
- इन परिवर्तनों से 2014 के चुनावों में बहुत खराब प्रदर्शन करने वाले अन्य दलों को भी राष्ट्रीय दल के रूप में अपनी मान्यता बनाये रखने में सहायता मिली है।
- अन्य छह दल हैं– भारतीय जनता पार्टी, कांग्रेस, बहुजन समाज पार्टी, राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी।

राष्ट्रीय दल बनने के मानदंड:

एक राजनैतिक दल को राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता प्राप्त हो जाएगी यदि:-

- उसे **चार** या अधिक राज्यों में लोक सभा या राज्य विधान सभाओं के आम चुनावों में डाले गये मतों का कम से कम **छह प्रतिशत** (6%) प्राप्त हुआ हो; और इसके साथ ही किसी एक राज्य या राज्यों से लोक सभा में कम से कम **चार** स्थान प्राप्त हुए हों।

  अथवा
- उसे लोक सभा में कम से कम **दो प्रतिशत** (2%) स्थान प्राप्त हुए हों (अर्थात 543 सदस्यों के वर्तमान सदन में 11 स्थान) और यह सदस्य कम से कम **तीन** विभिन्न राज्यों से चुन कर आये हों।

  अथवा
- दल को कम से कम चार राज्यों में एक राज्य दल के रूप में मान्यता प्राप्त हुई हो।

राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता प्राप्त करने के क्या लाभ हैं?

- राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता से उसके प्रत्याशी पूरे देश में उसके आरक्षित चुनाव चिन्ह पर चुनाव लड़ सकते हैं। क्योंकि देश के अधिकांश मतदाता अशिक्षित हैं और दलों की पहचान के लिए उन्हें चुनाव चिन्ह पर ही निर्भर रहना पड़ता है, इसलिए राजनीतिक दलों के लिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण है।

- राष्ट्रीय दलों के प्रत्याशियों को नामांकन भरने के लिए केवल एक ही प्रस्तावक की आवश्यकता होती है और वह मतदाता सूची की दो प्रतियां निशुल्क प्राप्त करने का अधिकारी होता है।
- आम चुनावों के समय पर राष्ट्रीय दलों को दूरदर्शन और ऑल इंडिया रेडियो जैसे सार्वजनिक प्रसारकों पर समर्पित समयावधि उपलब्ध होती है।

एक राष्ट्रीय दल जहाँ अधिकतम 40 स्टार प्रचारकों की सेवाएं ले सकता है, वहीं मान्यता-रहित दल अधिकतम केवल 20 स्टार प्रचारकों का ही नामांकन कर सकता है, जिनका यात्रा खर्च प्रत्याशी के व्यक्तिगत चुनाव खर्च में नहीं जोड़ा जायेगा।

5.10. जनमत संग्रह की प्रासंगिकता और उपयुक्तता

(Relevance and Suitability of 'Referendum')

जनमत संग्रह क्या है?

- जनमत संग्रह, प्रत्यक्ष लोकतंत्र के उपकरण हैं जहाँ नागरिक को प्रतिनिधियों, जो उनके स्थान पर कार्य करते हैं, के लिए मतदान करने के बजाय विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण मुद्दों पर सीधे मतदान करने का मौक़ा मिलता है।
- इन्हें विशेष रूप से आधुनिक राज्यों में एक बेहतर लोकतांत्रिक साधन माना जाता है। जहाँ लोगों की निर्णय लेने में एक बेहतर भूमिका होती है।

क्या यह एक सही लोकतांत्रिक उपकरण है?

सम्पूर्ण विश्व में विशेष रूप से पश्चिमी यूरोपीय देशों में जनमत संग्रहों की स्वीकृति में वृद्धि के आलोक में, भारत में भी जनमत संग्रहों की मांग आरम्भ हो गयी है।

पक्ष में तर्क:

- यह सच्चे लोकतंत्र का एक रूप है, क्योंकि यह सीधे लोगों को शक्ति प्रदान करता है।
- जनमत संग्रह, कठिन विधायी निर्णयों को वैधता प्रदान करने में सहायक होते हैं क्योंकि इसके बिना कोई भी अलोकप्रिय निर्णय लेना जोखिम भरा हो सकता है।
- जनमत संग्रहों की बढ़ती मांग (जैसे- यूरोपीय संघ के विभिन्न देशों में), विभिन्न मुद्दों पर लोगों की बढ़ती हताशा को प्रदर्शित करती है। इससे पहले यह हताशा; विरोध प्रदर्शन, विद्रोह और यहाँ तक कि हिंसा का रूप ले लिया करती थी। अब जनमत संग्रह द्वारा शांतिपूर्ण ढंग से परिवर्तन लाया जा सकता है।

विपक्ष में तर्क:

- बहुमत की निरकुंशता: उदाहरण के लिए, वर्ष 2009 में स्विट्जरलैंड में मस्जिद मीनारों के निर्माण से सम्बंधित मुद्दे पर एक जनमत संग्रह में, लोगों ने इनके निर्माण के खिलाफ मतदान किया। इसका मुख्य कारण यह था कि लोगों का बहुमत इस बात के प्रति आश्वस्त था कि यह एक इस्लामी अतिक्रमण (Islamic invasion) है जबकि संपूर्ण देश में इनकी संख्या केवल 4 थी।
- यह जटिल प्रश्नों को सरल 'हाँ' या 'नहीं' उत्तर देने तक सीमित कर देता है। कभी-कभी ऐसे तर्क भी जन भावनाओं और जनोत्तेजनाओं को गति देने के लिए के लिए पर्याप्त होते हैं जिनके पीछे कोई आधार या प्रमाण नहीं होता है; जैसे कि इस लोकप्रिय विचार ने ब्रेक्ज़िट (Brexit) के समर्थन में वोट देने के लिए लोगों को प्रेरित किया कि प्रवासी लोग ब्रिटेन तथा उसके नागरिकों की आर्थिक कठिनाइयों के लिए जिम्मेदार हैं। हालांकि, इस तर्क का समर्थन करने के लिए कोई प्रमाण नहीं था।
- कई बार कुछ महत्वपूर्ण कानून जन मत के खिलाफ हो सकते हैं लेकिन निर्वाचित प्रतिनिधि अपने ज्ञान और विवेक के माध्यम से उनका विधायन सुनिश्चित कर सकते हैं जैसे- नस्लीय भेदभाव के विरुद्ध, मौत की सजा समाप्त करने आदि से संबंधित कानून।

आगे की राह:

- ऐसे निर्णय को जल्दबाजी में या एक बार के जनमत संग्रहों के माध्यम से नहीं लिया जाना चाहिए जो न केवल वर्तमान पीढ़ी को अपितु आगामी पीढ़ियों को भी गहराई से प्रभावित करते हैं।
- बड़ी संख्या में लोगों के हस्ताक्षर पर आधारित एक ऐसी प्रणाली का विकास किया जा सकता है जो उन चुनिंदा विधेयकों और अधिनियमों पर जनमत संग्रह की मांग करे जिसके संबंध में ये लोग वोट करना चाहते हैं। यह उपाय न केवल महत्वपूर्ण कानूनों के प्रति लोगों को संवेदनशील बनाता है बल्कि यह उन कानूनों के लिए लोकप्रिय मंजूरी प्राप्त करने का एक साधन बन सकता है। जैसे कि क्या जनता के कल्याण से सम्बंधित कानून जैसे आधारकार्ड को सामाजिक सेवाओं का लाभ उठाने के अनिवार्य बनाया जाना चाहिए या नहीं? यह प्रश्न जनमत संग्रह में रखा जा सकता है।

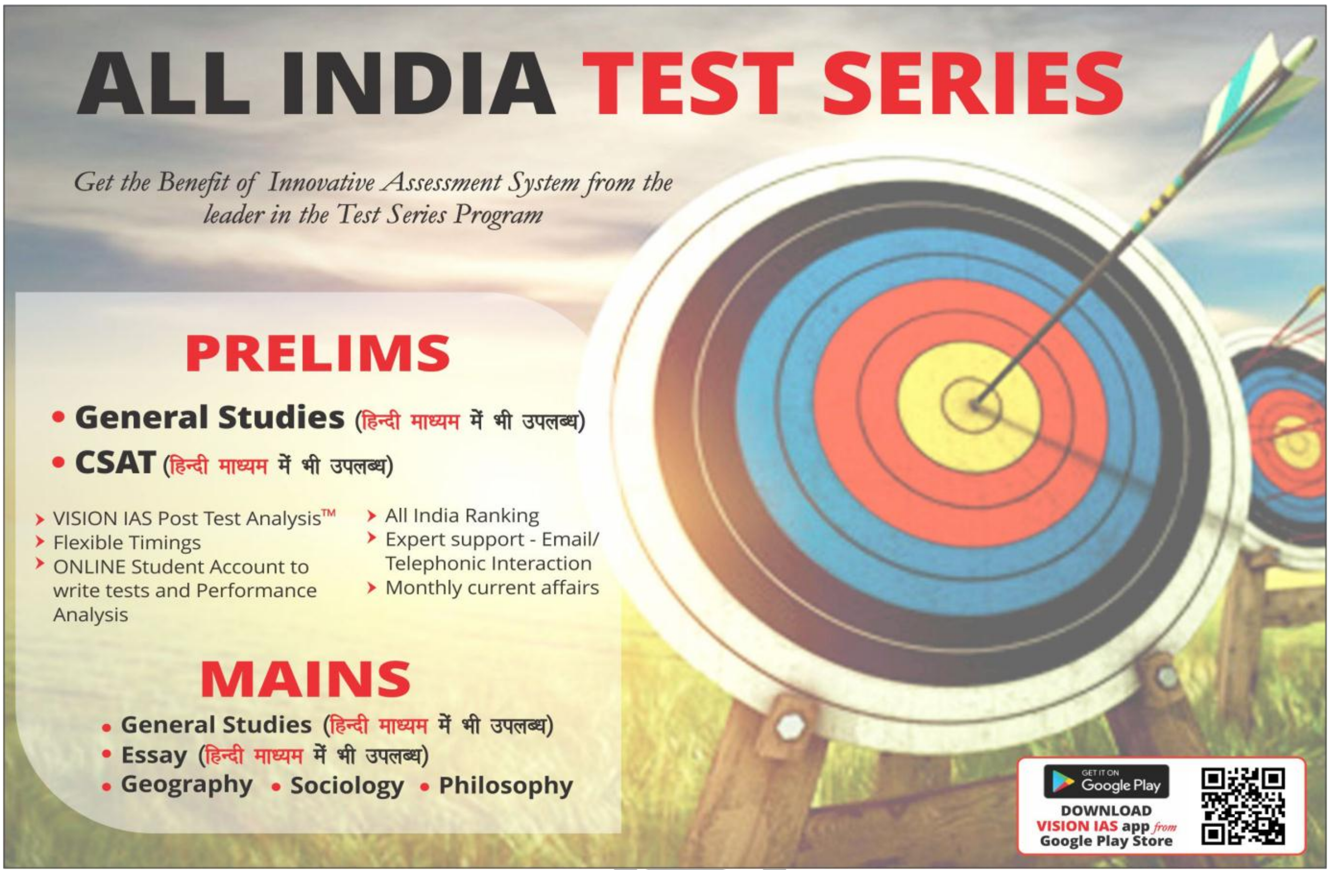
ALL INDIA TEST SERIES
Get the Benefit of Innovative Assessment System from the leader in the Test Series Program
PRELIMS
• General Studies (हिन्दी माध्यम में भी उपलब्ध)
• CSAT (हिन्दी माध्यम में भी उपलब्ध)
VISION IAS Post Test Analysis™
Flexible Timings
ONLINE Student Account to write tests and Performance Analysis
All India Ranking
Expert support - Email/ Telephonic Interaction
Monthly current affairs
MAINS
• General Studies (हिन्दी माध्यम में भी उपलब्ध)
• Essay (हिन्दी माध्यम में भी उपलब्ध)
• Geography • Sociology • Philosophy
GET IT ON Google Play
DOWNLOAD VISION IAS app from Google Play Store

The Secret To Getting Ahead Is Getting Started
ALTERNATIVE CLASSROOM PROGRAM for
GS PRELIMS & MAINS 2019 & 2020
Regular Batch
21 Sept 9 AM
25 Oct 5 PM
Weekend Batch
23 Sept 9 AM
• Approach is to build fundamental concepts and analytical ability in students to enable them to answer questions of Preliminary as well as Mains examination
• Includes comprehensive coverage of all the topics for all the four papers of G.S. Mains , GS Prelims & Essay
• Includes comprehensive, relevant & updated study material
LIVE / ONLINE CLASSES AVAILABLE
• Access to recorded classroom videos at personal student platform
• Includes All India G.S. Mains, Prelim, CSAT & Essay Test Series of 2018, 2019, 2020
• Our Comprehensive Current Affairs classes of PT 365 and Mains 365 of year 2018, 2019, 2020 (Online Classes only)
GET IT ON Google Play
DOWNLOAD VISION IAS app from Google Play Store

6. न्यायपालिका

(JUDICIARY)

6.1. राष्ट्रीय अपील न्यायालय

(National Court of Appeal)

सुर्ख़ियों में क्यों?

पूर्व में भी कई बार राष्ट्रीय अपील न्यायालय (NCA) का विचार सामने रखा गया, किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने इसकी व्यवहार्यता को अस्वीकार कर दिया था। हाल ही में चेन्नई के एक याचिकाकर्ता वी. वसंतकुमार द्वारा दायर जनहित याचिका में, सर्वोच्च न्यायालय ने पहली बार इस विचार के प्रति सकारात्मक रुख प्रदर्शित किया है।

यह क्या है?

- उच्च न्यायालयों तथा सिविल, आपराधिक, श्रम और राजस्व विषयों से संबंधित न्यायाधिकरणों के द्वारा प्रदान किये गए निर्णयों के विरुद्ध की जाने वाली अपील के संबंध में अंतिम न्यायालय के रूप में राष्ट्रीय अपील न्यायालय का गठन किया जाना प्रस्तावित है। चेन्नई, मुंबई और कोलकाता में इसकी क्षेत्रीय पीठें स्थापित की जायेंगी।
- ऐसी स्थिति में, दिल्ली में स्थित सर्वोच्च न्यायालय केवल संवैधानिक कानूनों और सार्वजनिक कानूनों के मामलों की सुनवाई करेगा।

आवश्यकता

- निचली अदालतों से काफी बड़ी संख्या में होने वाली अपीलों के कारण सर्वोच्च न्यायालय मुकदमों के भारी बोझ तले दबा हुआ है। इस कारण, सर्वोच्च न्यायालय संवैधानिक मामलों पर निर्णय करने और संविधान के निर्वचन के अपने प्राथमिक कर्तव्य का निर्वहन नहीं कर पाता है। उदाहरण के लिए,
  - संवैधानिक पीठों द्वारा निर्णीत वादों की संख्या में भारी गिरावट आई है; 1950 के दशक में यह कुल निर्णीत वादों की संख्या का लगभग 15% थी वहीं पिछले दशक के दौरान यह गिरकर मात्र 0.12% रह गयी। यह स्थिति अत्यंत चिंताजनक है।
  - अनुच्छेद 145 (3) अधिदेश देता है कि 'संवैधानिक कानून के तात्विक प्रश्न' से जुड़े मामलों में निर्णय के लिए न्यूनतम 5 न्यायाधीशों की संवैधानिक पीठ होगी। स्पष्ट रूप से इस अधिदेश का पालन नहीं किया जा रहा है। उदाहरणार्थ समलैंगिकता के गैर-अपराधीकरण के प्रश्न से संबंधित नाज फाऊंडेशन वाद, IT अधिनियम की धारा 66A की अवैधता से संबंधित श्रेया सिंघल वाद में निर्णय केवल 2 न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिया गया था।
- दिल्ली में अवस्थित होने के कारण सर्वोच्च न्यायालय विशेषकर गरीबों और उत्तर-पूर्व जैसे सुदूर स्थानों में रहने वाले लोगों के लिए सुलभ नहीं है। अध्ययनों से पता चलता है कि अधिसंख्यक अपीलें दिल्ली उच्च न्यायालय से आती हैं।

सीमाएं

- राष्ट्रीय अपील न्यायालय की शक्तियाँ और विशेषताएं मूलतः शीर्ष न्यायालय के रूप में सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियाँ और विशेषताएं ही हैं। अतः इस न्यायालय की स्थापना के लिए अनुच्छेद 130 में संशोधन की आवश्यकता है। जो संभवतः 'आधारभूत ढाँचे' की कसौटी पर खरा न उतरे।
- NCA के अंतर्गत SLP (स्पेशल लीव पिटिशन या विशेष अनुमति याचिका) के अविवेकपूर्ण प्रयोग के मुद्दे पर स्पष्टता नहीं है। निश्चित रूप से भारत की कानूनी व्यवस्था में SLP की भूमिका व्यापक सार्वजनिक उद्देश्य पर आधारित कानून के प्रश्नों के निर्णयन से संबंधित है। लेकिन ध्यातव्य है कि इस शक्ति का अनावश्यक रूप से अत्यधिक प्रयोग किया गया है।

सुझाव

- विशेषज्ञों का मानना है कि निचली अदालतों के काम-काज में सुधार लाने पर अधिक ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए।
- उच्च न्यायालयों की अपील संबंधी संरचना में सुधार;

- सभी मामलों में अपील हेतु द्वि-स्तरीय व्यवस्था उपलब्ध होनी चाहिए। इनमें सेवा संबंधित मामले भी शामिल हैं। सभी उच्च न्यायालयों में मामलों की सुनवाई पहले केवल एकल पीठ के समक्ष और फिर लेटर पेटेंट्स अपील (Letter Patents Appeal) के रूप में खंड पीठ के समक्ष की जानी चाहिए।
- न्यायाधिकरणों से होने वाली अपीलों के लिए भी इसी मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।
- अधीनस्थ स्तर पर न्यायिक निर्णय में सुधार लाने की आवश्यकता जैसे- बेहतर न्यायाधीशों की नियुक्ति इत्यादि।

निष्कर्ष

- NCA का गठन न्याय व्यवस्था में एक बहुत बड़ा बदलाव है जिसके वास्तविकता में परिणत होने के मार्ग में असंख्य व्यावहारिक समस्याएँ विद्यमान हैं। तब तक इस मुद्दे से निपटने के लिए अन्य उपाय किए जाने चाहिए - जैसे अपीलीय बोझ कम करना (SLP को तर्कसंगत बनाना, अधीनस्थ न्यायपालिका में सुधार, न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि, गुणवत्ता, अवसंरचना आदि में सुधार लाना)
- उच्च न्यायालय की भांति 4 महत्वपूर्ण शहरों में सर्वोच्च न्यायालय की पीठें स्थापित कर न्यायालय तक पहुँच संबंधी समस्या का समाधान किया जा सकता है।

6.2.अखिल भारतीय न्यायिक सेवा

(All India Judicial Services)

प्रधानमंत्री ने हाल ही में एक अखिल भारतीय न्यायिक सेवा **(ऑल इंडियन जुडिशियल सर्विसेज : AIJS)** के माध्यम से न्यायाधीशों की भर्ती की संभावना पर फिर से चर्चा की।

AIJS के पक्ष में तर्क

- यह संख्या के बजाय न्यायाधीशों की गुणवत्ता पर केंद्रित है।
- यह एक न्यायाधीश की भूमिका निभाने हेतु सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा के चयन का उचित तरीका है।
- वर्तमान में अधीनस्थ न्यायपालिका पूरी तरह से राज्यों द्वारा की जाने वाली भर्ती प्रक्रिया पर निर्भर है। परंतु राज्य न्यायिक सेवा के आकर्षक न होने के कारण श्रेष्ठ विधि छात्र इसमें शामिल नहीं होते हैं।
- कैरियर में कोई खास प्रगति न होने के कारण कोई भी ऐसा अधिवक्ता जिसकी बार प्रैक्टिस अच्छी चल रही है, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश बनकर स्थानांतरण और नियुक्तियों की परेशानियों में उलझना नहीं चाहता। अतः अधीनस्थ न्यायपालिका की गुणवत्ता औसत ही रह जाती है।
- इससे चयन के मानकों में एकरूपता के आने से विभिन्न उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की गुणवत्ता में भी सुधार होगा, क्योंकि उच्च न्यायालयों में एक-तिहाई न्यायाधीशों की नियुक्ति अधीनस्थ न्यायालयों से पदोन्नति के माध्यम से होती है।
- इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय की बेंच में बाहरी सदस्य को शामिल करने का उद्देश्य बेहतर ढंग से प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि एक अखिल भारतीय न्यायिक सेवा का सदस्य अंतरराज्यीय स्थानान्तरण के लिए मानसिक रूप से तैयार होगा।

पूर्व में सिफारिश

- न्यायिक प्रशासन संबंधी सुधारों पर अपनी 14वीं रिपोर्ट में भारत के पहले विधि आयोग (लॉ कमीशन ऑफ़ इण्डिया: LCI) ने न्यायपालिका की दक्षता के हित में एक AIJS की सिफारिश की। अपनी 77वीं रिपोर्ट में LCI ने एक बार फिर कहा कि AIJS पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।
- 1982 में मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में एक AIJS के विचार को मंजूरी दी गयी थी।
- सुप्रीम कोर्ट ने स्वयं कहा था कि AIJS गठित की जानी चाहिए और इस संबंध में उचित कदम उठाने के लिए भारत सरकार को निर्देश भी दिया था।
- 1976 में स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिशों के बाद, न्यायिक सेवाओं को शामिल करने के लिए अनुच्छेद 312 को संशोधित किया गया।

आगे की राह

- न्यायिक सेवा के तौर पर कैरियर वस्तुतः न्यायपालिका को अधिक जवाबदेह, अधिक पेशेवर और यकीनन अधिक न्यायसंगत बनाएगा।
- इसका न्याय की गुणवत्ता और लोगों की न्याय तक पहुँच पर दूरगामी प्रभाव पड़ सकता है।

VISION IAS

6.3. न्यायालय की अवमानना

(Contempt of Court)

भारत के न्यायालयों ने समय-समय पर अपनी अवमानना शक्तियों का प्रयोग किया गया है। इसके तहत न्यायालयों ने अपने विचारों से असहमति जताने वालों पर न्यायपालिका के प्राधिकार के विरुद्ध निंदापूर्ण एवं असम्मानजनक अभिव्यक्तियों जैसे आधारों पर दंडात्मक कार्यवाहियां भी की हैं।

संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 129 और 215 के अंतर्गत क्रमशः सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों को उनकी अवमानना के लिए किसी व्यक्ति को दण्डित करने का अधिकार प्रदान किया गया है। न्यायपालिका को यह अधिकार न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 के तहत प्राप्त होता है। इस अधिनियम में न्यायपालिका की अवमानना शक्तियों को परिभाषित किया गया है। इसके उद्देश्य हैं:

- किसी न्यायालय के प्राधिकार की निंदा या उसकी प्रतिष्ठा को धूमिल करने से रोकना
- किसी न्यायिक कार्यवाही की यथोचित प्रक्रिया में किसी भी प्रकार के अनावश्यक हस्तक्षेप को रोकना
- एक विधिक प्राधिकरण के रूप में न्यायालय की भूमिका को सशक्त करना तथा यह सन्देश देना कि कानून सर्वोपरि है और उससे ऊपर कोई नहीं है।
- यह सुनिश्चित करना कि कोई भी अपनी स्वतंत्र इच्छा के अनुरूप न्यायालय के आदेशों का उल्लंघन न कर सके।

- न्यायालय की अवमानना के अंतर्गत, मौखिक या लिखित रूप से ऐसे शब्दों का प्रयोग करना शामिल है जो न्यायिक प्रशासन की अवमानना करते हों, किसी सिविल या आपराधिक कार्यवाही से सम्बंधित निष्पक्ष सुनवाई को पक्षपातपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हों अथवा किसी भी प्रकार से न्याय के उद्देश्य को बाधित करते हों।
- ऐसी शक्तियों की आवश्यकता: अवमानना संबंधी प्रावधान, न्यायाधीशों को मीडिया की आलोचना अथवा सामान्य जनता के विचारों से सम्बंधित किसी प्रकार के दबाव से संरक्षण प्रदान करने के लिए किये गये हैं, ताकि वे बिना किसी भय तथा पक्षपात अथवा बिना किसी प्रकार के बाहरी दबाव के अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर सकते हैं।

न्यायालय की अवमानना के विपक्ष में तर्क

- न्यायालय की कार्यवाही की अवमानना का प्रावधान, संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (a) के तहत सुनिश्चित वाक्-अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर रोक लगाता है।
- अनुच्छेद 19(2) में वाक्-अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर युक्तियुक्त प्रतिबंध के रूप में 'न्यायालय की अवमानना' शामिल है, लेकिन वर्तमान स्वरूप में इसका औचित्य सिद्ध करना एक लोकतंत्र में स्वीकार्य नहीं है।
- संविधान सभा में, पंडित ठाकुर दास भार्गव ने कहा था कि अवमानना के लिए दण्डित करने की शक्ति का सम्बन्ध केवल न्यायालय के किसी आदेश या निर्देश की अवज्ञा से है जो कि पहले से ही दंडनीय अपराध है।
- उन्होंने तर्क दिया कि, न्यायालयों की आलोचना में कही गई किसी बात को अवमानना के रूप में नहीं माना जाना चाहिए, क्योंकि यह न्यायालय द्वारा अवमानना संबंधित शक्तियों के सकल न्यायिक दुरुपयोग की संभावना के द्वार खोल देगा जो कई उदाहरणों में अब प्रमाणित भी हो गया है।
- भारत ने इंग्लैंड से अवमानना के नियम को अपनाया है। दिलचस्प बात यह है कि स्वयं इंग्लैंड में आठ से अधिक दशकों में न्यायालयों में अवमानना के मामले में कोई भी सजा नहीं हुई है।

निष्कर्ष

अवमानना की शक्तियों का प्रयोग इस प्रकार किया जाना चाहिए कि इससे न्यायाधीशों की स्वतंत्रता सुनिश्चित होने के साथ-साथ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन भी न हो। 1971 के अधिनियम के तहत दी गयी निष्पक्ष आलोचना की अनुमति तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का सम्मान करते हुए न्यायपालिका को अधिक उदार होना चाहिए। इसके साथ ही न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 के प्रावधानों को ब्रिटेन तथा अमेरिका के समान उपयुक्त रूप से संशोधित या निरस्त किया जाना चाहिए। अमेरिका में इस तरह के कानून अस्तित्व में नहीं है। किन्तु 2006 में 1971 के अधिनियम में किये गए संशोधनों के बावजूद भी न्यायपालिका द्वारा इस शक्ति के प्रयोग के मामलों में कमी नहीं आयी है। अतः अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा न्यायालय की अवमानना शक्तियों के मध्य उचित संतुलन न्यायपालिका द्वारा स्वयं ही स्थापित किया जा सकता है।

VISION IAS

6.4. न्यायाधीशों की नियुक्ति

(Appointment of judges)

सुर्खियों में क्यों?

सर्वोच्च न्यायालय ने कॉलेजियम द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए प्रक्रिया का ज्ञापन (मेमोरेंडम ऑफ़ प्रोसीजर; MoP) सरकार को सौंपा है।

कॉलेजियम प्रणाली का विकास

- **प्रथम न्यायाधीश वाद, 1981:** सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि भारत के मुख्य न्यायाधीश (CJI) द्वारा राष्ट्रपति को दी गई अनुशंसा को **"ठोस कारणों" (cogent reasons)** से अस्वीकार किया जा सकता है, इस प्रकार से कार्यपालिका को और अधिक शक्ति प्रदान की गई।
- **द्वितीय न्यायाधीश वाद, 1993:** इसे सर्वोच्च न्यायालय एडवोकेट्स ऑन रिकॉर्ड एसोसिएशन बनाम भारत संघ के रूप में भी जाना जाता है। इसने कॉलेजियम प्रणाली के सृजन का मार्ग प्रशस्त किया। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि भारत के मुख्य न्यायाधीश को नियुक्तियों में **"प्रमुख" (primal)** भूमिका दी जानी चाहिए।
- **तृतीय न्यायाधीश वाद, 1998:** राष्ट्रपति के. आर. नारायणन द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 124 और 217 के तहत सर्वोच्च न्यायालय को **"परामर्श" (consultation)** के अर्थ के संबंध में प्रेसिडेंशिअल रिफरेन्स जारी किया गया। इसके उत्तर में, सर्वोच्च न्यायालय ने कॉलेजियम प्रणाली के काम-काज के लिए दिशा-निर्देश निर्धारित किए।

न्यायपालिका की प्रधानता आवश्यक है क्योंकि

- **सरकार प्रमुख याचिकाकर्ता है:** चूंकि सरकार प्रमुख याचिकाकर्ता है, अत: इससे सरकार अपनी सुविधानुसार नियुक्तियां कर सकती है और न्यायालयों की महत्ता को कम कर सकती है।
- **न्यायपालिका की स्वतंत्रता:** इसे संविधान का मूल ढांचा माना गया है और राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (NJAC) को न्यायपालिका की स्वतंत्रता का उल्लंघन करने वाला माना गया है।
- यह भारत के संविधान द्वारा निर्देशित कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच **शक्तियों के पृथक्करण** को बढ़ावा देता है।

पृष्ठभूमि

- सरकार ने 99वें संवैधानिक संशोधन के माध्यम से राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (NJAC) का गठन किया था।
- उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति और स्थानांतरण करने और भारत के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करने के लिए स्वतंत्र आयोग के रूप में इसकी कल्पना की गई थी।
- इसका गठन तीन वरिष्ठ न्यायाधीश, दो प्रख्यात बाहरी लोगों और कानून मंत्री से मिलकर होना था।
- हालाँकि, इससे पहले कि इसे अधिसूचित किया जाता, इसे इस आधार पर चुनौती दी गई कि सरकार द्वारा न्यायपालिका की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप किया जा रहा है।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय

- न्यायालय ने **संशोधन** को निरस्त कर दिया है और कहा कि NJAC **"न्यायिक घटक के लिए पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं प्रदान करता है"।**
- संविधान में किया गया नया संशोधन न्यायाधीशों के चयन और नियुक्ति के संबंध में न्यायपालिका की प्रधानता बनाए रखने के लिए अपर्याप्त है।
- यह कहा गया है कि संशोधन **"न्यायपालिका की स्वतत्रता"** के सिद्धांतों के साथ-साथ **"शक्ति-पृथक्करण"** के सिद्धांतों के विपरीत है।
- प्रस्तावित NJAC को अमान्य घोषित करने के बाद, सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने केंद्र से उच्च न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए नए ज्ञापन का प्रारूप तैयार करने के लिए मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करने के लिए कहा।
- विदेश मंत्री के नेतृत्व में मंत्रियों के समूह (GoM) ने उपर्युक्त पर कार्यवाही करते हुए न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए मेमोरेंडम ऑफ़ प्रोसीजर (MoP) को अंतिम रूप दिया।

भारत में न्यायाधीशों की नियुक्ति: कोलेजियम की अनुशंसा पर राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाती है। उनकी नियुक्ति से संबंधित संवैधानिक प्रावधान निम्नलिखित हैं:

- **अनुच्छेद 124** में कहा गया है कि राष्ट्रपति को उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के ऐसे न्यायाधीशों, जिन्हें वह आवश्यक समझे, से परामर्श करने के बाद सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करनी चाहिए। भारत के मुख्य न्यायाधीश से उसकी अपनी नियुक्ति को छोड़कर सभी नियुक्तियों में परामर्श किया जाना चाहिए।
- उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति से संबंधित **अनुच्छेद 217** में कहा गया है कि राष्ट्रपति को उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश, राज्यपाल और संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करना चाहिए। **इनमें से कोई भी प्रावधान कॉलेजियम प्रणाली के संबंध में चर्चा नहीं करता है।**

MoP की मुख्य विशेषताएं

- पहली बार **उच्च न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए, "मुख्य मापदंड" के रूप में योग्यता और सत्यनिष्ठा (merit and integrity) को सम्मिलित करने के लिए कहा गया है।**
- पिछले पांच वर्षों के दौरान उच्च न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णयों का मूल्यांकन और न्यायिक प्रशासन में सुधार के लिए की गई पहलों को उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के रूप में पदोन्नति के लिए योग्यता का आधार होना चाहिए।
- यह उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों **की नियुक्ति करने के लिए मानक के रूप में कार्य-निष्पादन के मूल्यांकन को प्रस्तावित करता है।**
- यह प्रस्तावित करता है कि सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए **"मुख्य मानदंड" "उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश / न्यायाधीशों की वरिष्ठता"** होनी चाहिए।
- MoP निर्दिष्ट करता है कि सर्वोच्च न्यायालय में कम से कम तीन न्यायाधीश बार कौंसिल के प्रख्यात सदस्यों और अपने संबंधित क्षेत्रों में प्रमाणित ट्रैक रिकॉर्ड वाले प्रतिष्ठित न्यायविदों में से नियुक्त किए जाने चाहिए।
- उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के रिकार्ड को सुरक्षित रखने, कोलेजियम की बैठकों का कार्यक्रम निर्धारित करने, नियुक्तियों से संबंधित अनुशंसाओं के साथ-साथ शिकायतें प्राप्त करने के लिए **सर्वोच्च न्यायालय में स्थायी सचिवालय स्थापित किया जाना चाहिए।**
- केंद्रीय कानून मंत्री को पदस्थ CJI के उत्तराधिकारी की नियुक्ति के सम्बन्ध में अनुशंसा उसकी सेवानिवृत्ति से कम से कम एक महीने पहले मांगनी चाहिए।
- वर्ष के आरंभ में नियुक्तियों से संबंधित सूचनाओं को उच्च न्यायालयों की वेबसाइट पर उपलब्ध कराना चाहिए।
- किसी भी व्यक्ति की न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति को लेकर नए आपत्ति आधारों के रूप में **राष्ट्रीय सुरक्षा और सार्वजनिक हित** को सम्मिलित किया गया है। यदि सरकार को राष्ट्रीय सुरक्षा और सार्वजनिक हित के आधार पर आपत्तियां हैं तो वह कॉलेजियम को सूचित करेगी। इसके बाद कॉलेजियम अंतिम निर्णय लेगा।

6.5. न्यायिक आचार एवं जवाबदेहिता

(Judicial Conduct and Accountability)

सुर्ख़ियों में क्यों?

इस वर्ष के प्रारंभ में मद्रास उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश 'सी एस कर्णन' अपने व्यवहार के कारण विवाद में रहे थे। यह विवाद न्यायपालिका से जुड़े विभिन्न मुद्दों एवं समस्याओं को प्रकाश में ले आया। इनकी चर्चा विभिन्न उप-खंडों में की जा रही है।

उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों का स्थानांतरण

संविधान के अनुच्छेद 222(1) के अनुसार राष्ट्रपति, भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करने के पश्चात् किसी न्यायाधीश का एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में स्थानांतरण कर सकते है।

उत्पन्न चिंताएँ

- उच्चतर न्यायालयों के न्यायाधीशों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाई करने के लिए महाभियोग के अतिरिक्त किसी अन्य मशीनरी का अभाव है।
- **महाभियोग से सम्बंधित समस्याएँ-** यह एक लम्बी और कठिन कठिन प्रक्रिया है। इसके साथ ही इस पर राजनैतिक प्रभाव भी रहता है।
- **केवल अनौपचारिक उपाय उपलब्ध-** न्यायाधीश के कार्यभार में परिवर्तन, उसे सभी न्यायिक कार्यों से मुक्त करना अथवा किसी अन्य उच्च न्यायालय में स्थानांतरण करने जैसे उपाय उपलब्ध हैं किन्तु ये प्रभावी प्रतिरोध उत्पन्न नहीं कर पाते हैं। ऐसा ही न्यायमूर्ति कर्णन के मामले में भी देखा गया है।
- **न्यायपालिका का अपमान-** न्यायिक आचरण के सभी मानदंडों की अवहेलना करते हुए उच्चतम न्यायालय को खुले तौर पर चुनौती दी गयी। इस प्रकरण ने न्यायालय की छवि और इसमें लोगों के विश्वास को प्रभावित किया है।
- **लोकतंत्र और न्याय के शासन का उपहास-** न्यायाधीश कर्णन का अपने अनुशासनहीन व्यवहार के बाद भी इतने लंबे समय तक न्यायाधीश के रूप में बने रहना न्यायपालिका के उपहास का कारण बना।
- **न्यायपालिका द्वारा स्वयं की पदमुक्ति-** न्यायाधीश कर्णन के विरुद्ध न्यायालय की अवमानना का निर्णय दिए जाने से उन्हें न्यायाधीश के पद से मुक्त करने की सम्भावना भी बन गयी अर्थात न्यायालय के आदेश द्वारा "महाभियोग" की सम्भावना उत्पन्न हो गयी।
- **अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता -** मीडिया को किसी भी वक्तव्य को प्रकाशित करने से रोकना, वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के दृष्टिकोण से अनुचित है।

न्यायाधीशों को पदमुक्त करना: एक पृष्ठभूमि

- संविधान के अनुच्छेद 124 (4) के तहत सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश को राष्ट्रपति द्वारा केवल 'साबित कदाचार' या 'असमर्थता' के आधार पर ही हटाया जा सकता है। इस संदर्भ में प्रस्ताव संसद के दोनों सदनों द्वारा विशेष बहुमत से पारित किया जाना चाहिए।
- संविधान के अनुसार यह आवश्यक है कि कदाचार या असमर्थता को एक निष्पक्ष समिति द्वारा सिद्ध किया जाए। इसकी संरचना का निर्धारण न्यायाधीश जाँच अधिनियम, 1968 के तहत किया गया है।
- अनुच्छेद 217(B) उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने संबंधी प्रावधान करता है।
- 1950 के बाद से इस अधिनियम का तीन बार प्रयोग किया गया है। फिर भी किसी भी न्यायाधीश पर आज तक सफलतापूर्वक महाभियोग नहीं चल सका है।

न्यायाधीशों को पदमुक्त करने संबंधी मुद्दे

- न्यायमूर्ति कर्णन के व्यवहार से न्यायिक व्यवस्था द्वारा स्वयं के शीर्ष स्तरों की कार्यप्रणाली में व्याप्त अनियमितताओं से निपटने में असमर्थता को प्रदर्शित किया है।
- दो वर्ष पूर्व उन्हें उनके आचरण के लिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा फटकार लगायी गयी थी। फिर भी उन्हें उनके तरीके से ही कार्य जारी रखने की छूट दी गयी, परिणामस्वरूप प्रत्येक अगली घटना में मूल्यों में और अधिक गिरावट देखने को मिली।
- एकमात्र उपलब्ध विकल्प न्यायाधीश का स्थानान्तरण है। किन्तु वस्तुतः यह समस्या को सुलझाने की बजाय उसे एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में हस्तांतरित कर देता है।
- महाभियोग के अतिरिक्त बहुत ही कम प्रभावी उपाय उपलब्ध हैं। महाभियोग की प्रक्रिया को लेकर भी कुछ समस्याएँ हैं:
    - भ्रष्ट न्यायाधीश के मामले में केवल संसद संज्ञान ले सकती है। किसी आम व्यक्ति को इस सन्दर्भ में कोई अधिकार प्राप्त नहीं है।
    - कानून कदाचार को परिभाषित नहीं करता है और इसलिए कदाचार के विस्तृत क्षेत्र को पहचानने में विफल रहता है।
    - महाभियोग की प्रक्रिया बहुत लंबी है।
    - इसमें राजनीतिक पक्ष भी शामिल है। उदाहरण के लिए 1993 में कांग्रेस ने स्वयं को न्यायमूर्ति वी रामास्वामी को हटाने के प्रस्ताव से अलग रखा था परिणामस्वरूप महाभियोग साबित नहीं हो सका था।
    - जांच के दौरान न्यायाधीश को न्यायालय में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने से निषिद्ध नहीं किया जाता है।

VISION IAS

2012 के अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ

- वर्तमान में न्यायिक मानकों को एक अनौपचारिक कोड ***'रिस्टेटमेंट ऑफ़ वैल्यूज ऑफ़ जुडिशल लाइफ'*** द्वारा नियमित किया जा रहा है। यह विधेयक इसे विधिक समर्थन प्रदान करेगा, साथ ही निम्न प्रावधान भी प्रदान करेगा:
    - इसमें न्यायाधीशों द्वारा संपत्ति की अनिवार्य घोषणा शामिल होगी।
    - बार के सदस्यों के साथ निवास स्थान को साझा नहीं किया जाएगा।
    - एक न्यायाधीश को बार के सदस्यों के साथ संबंध विकसित नहीं करने चाहिए।
- शिकायतों पर निर्णय लेने के लिए एक नेशनल ज्युडिशियल ओवरसाईट कमिटी (NJOS) और एक कम्प्लैंट्स स्क्रूटिनी पैनल (CSP) की स्थापना की जानी चाहिए।
- इस अधिनियम में गौण कदाचार के मामले में संबंधित न्यायाधीश को सलाह या चेतावनी देने के लिए प्रावधान किया गया है। लेकिन गंभीर कदाचार के मामलों में न्यायाधीश को हटाने के संबंध में संसद को सुझाव दिया जा सकता है।

आगे की राह

- न्यायिक मानक और जवाबदेही विधेयक 2012 (जो समाप्त हो चुका है) की तर्ज़ पर **एक नया न्यायिक मानक और जवाबदेही विधेयक** लाया जाए ताकि कानूनी रूप से बाध्यकारी मानकों के समूह की स्थापना की जा सके। इससे उच्चतर न्यायपालिका की गरिमा को बनाए रखने और न्यायाधीशों के समक्ष आने वाली जन शिकायतों पर कार्रवाई करने की एक नई संरचना की स्थापना हो सकेगी।
- **न्यायपालिका से पृथक अनुशासनात्मक कार्रवाई करने वाले प्राधिकरण** – यह एक समाधान है जिसकी चर्चा की गई। हालांकि, इसमें अनेक कमियाँ विद्यमान हैं:
    - न्यायिक स्वतंत्रता के लिए संभावित खतरे।
    - यह कोई भी निर्णय करते समय न्यायाधीशों में भय पैदा कर सकता है कि उनके निर्णय सत्ता के विरुद्ध न हो जाए जैसा कि आपातकाल के समय देखा गया था।
    - संविधान का निर्माण पूर्ण न्यायिक स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए किया गया है, जिसमें संसद या विधायिका द्वारा न्यायिक आचरण या निर्णयों में हस्तक्षेप करने की कोई संभावना नहीं है।
- **नियुक्ति-** कोलेजियम को पर्याप्त सुरक्षा उपायों को अपनाना चाहिए ताकि उच्च न्यायालयों में उच्च क्षमता और ईमानदार न्यायाधीश ही नियुक्त किए जा सके। इसके लिए जजों की नियुक्ति प्रक्रिया को अत्यधिक पारदर्शी बनाना आवश्यक है।
- **बेहतर आंतरिक नियमन** - न्यायमूर्ति कर्णन के मामले में ऐसे अनेक उदाहरण विद्यमान हैं जिनमें देखा जा सकता है कि न्यायमूर्ति कर्णन द्वारा अनुचित व्यवहार किया गया था| ऐसे अनुचित व्यवहार की पहली घटना पर ही तत्परता से अनुशासनात्मक कार्यवाही होनी चाहिए थी| ऐसी घटनाओं के लिए संसद द्वारा एक नेशनल जुडिशियल ओवरसाइट कमेटी का गठन किया जाना चाहिए जो शिकायतों की छंटनी और जाँच करने की अपनी कार्यप्रणाली का विकास करे। ऐसी कमेटी की संरचना द्वारा न्यायिक स्वतंत्रता प्रभावित नहीं होनी चाहिए।

6.6. न्यायिक पारदर्शिता

(Judicial Transparency)

सुर्ख़ियों में क्यों?

- सर्वोच्च न्यायालय ने तीन महीनों के भीतर सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के कम से कम **दो जिलों** के कोर्टरूम और उसके परिसर में ऑडियो रिकॉर्डिंग रहित CCTV कैमरे लगाने का आदेश दिया है।
- अदालत की कार्यवाही रिकॉर्ड करने के लिए केंद्र सरकार और सर्वोच्च न्यायालय के बीच कई दौर के विचार-विमर्श के बाद यह कदम उठाया गया। विधि आयोग ने अदालती कार्यवाही की ऑडियो-विज़ुअल रिकॉर्डिंग की सिफारिश की है।
- इसके पूर्व **20वें विधि आयोग के अध्यक्ष अजीत प्रकाश शाह** ने अदालती कार्यवाही की ऑडियो-विज़ुअल रिकॉर्डिंग की सिफारिश की थी।

VISION IAS

- हालांकि, सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि CCTV कैमरों का फुटेज **सूचना का अधिकार अधिनियम (RTI)** के तहत उपलब्ध नहीं होगा और जो भी अदालत की वीडियो फुटेज चाहता है उसे संबंधित उच्च न्यायालय की अनुमति प्राप्त करनी होगी।

6.6.1. क्या न्यायपालिका को RTI के अधीन आना चाहिए?

(Should Judiciary Come Under RTI?)

RTI के दायरे में आने के प्रति न्यायालय की अनिच्छा

- हालाँकि सूचना के अधिकार (RTI) पर न्यायालयों की सामान्य घोषणाएं बहुत उदार रही हैं (परिसंपत्तियों की घोषणा, RTI के अंतर्गत राजनीतिक दलों को लाना आदि), किन्तु, स्वयं उनका व्यवहार प्राय: घोषणाओं के अनुरूप नहीं रहा है।
- हालांकि यह अधिनियम स्पष्ट रूप से न्यायालयों पर लागू होता है, जो कि लोक अधिकरणों की परिभाषा में सम्मिलित हैं, किन्तु अधिकांश उच्च न्यायालयों ने अधिनियम लागू होने के महीनों बाद भी जन सूचना अधिकारियों (PIO) की नियुक्ति नहीं की थी। कुछ उच्च न्यायालयों में तो उनकी नियुक्ति अभी तक नहीं की गयी है I इस प्रकार न्यायालयों के संबंध में लोगों के RTI को प्रभावी रूप से नकार दिया गया। इसके अतिरिक्त, PIO की नियुक्ति करने वाले न्यायालयों में से कई न्यायालयों ने अपने नियम बनाए हैं जो प्रभावी ढंग से सूचना देने से मना करते हैं।
- अन्य सार्वजनिक अधिकरणों में 10 रुपये आवेदन शुल्क के विपरीत इलाहाबाद और दिल्ली जैसे कई उच्च न्यायालयों द्वारा 500 रुपये की मांग की जाती है। कई न्यायालयों ने ऐसे नियम बनाए हैं जो प्रशासनिक और वित्तीय प्रकरणों के संबंध में सूचना का प्रकटीकरण निषिद्ध करते हैं।
- सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार को सलाह दी है कि जहाँ तक सर्वोच्च न्यायालय का संबंध है, इस सम्बन्ध में न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल का निर्णय अंतिम होना चाहिए। इसके बाद इस विषय में केंद्रीय सूचना आयोग में किसी स्वतंत्र अपील की अनुमति नहीं होनी चाहिए।
- यह तर्क न्यायपालिका की स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिए दिया गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने अनुशंसा की है कि मुख्य न्यायाधीश के पास न्यायाधीशों द्वारा आय और संपत्ति के प्रकटीकरण या न्यायाधीशों पर किसी भी स्वतंत्र अनुशासनात्मक प्राधिकार के गठन सहित किसी भी सूचना के प्रकटीकरण पर रोक लगाने का निर्बाध अधिकार होना चाहिए I सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार इस सम्बन्ध में सूचना के अधिकार के यथारूप क्रियान्वयन से न्यायपालिका की स्वतंत्रता खतरे में पड़ सकती है I
- RTI अधिनियम के तहत कॉलेजियम की कार्यवाही के प्रकटीकरण का लगभग सभी उच्च न्यायालयों ने प्रबल विरोध किया है।

RTI के विरोध में दिए गए तर्क

- यह संभव है कि कॉलेजियम में खुल कर विचार विमर्श किया गया हो और इसमें काफी अन्दर तक पड़ताल करने वाली सरकारी खुफिया रिपोर्ट्स की जांच और न्यायाधीशों की निजी राय भी शामिल हो।
- दूसरी तरफ न्यायाधीशों के लिए, उनकी विश्वसनीयता और प्रतिष्ठा अत्यधिक महत्वपूर्ण है। अतः कई लोगों का मानना है कि उस प्रतिष्ठा का थोड़ा सा भी संभावित अनादर एक न्यायाधीश के प्रति आम जन में व्याप्त सम्मान की भावना को चोट पंहुचा सकता है और उन्हें निष्पक्ष तरीके से अपना काम करने से भी रोक सकता है।

न्यायपालिका को RTI के अधीन लाने के पक्ष में तर्क

- लोकतंत्र में न्यायपालिका सहित, सभी संस्थान पारदर्शी और जवाबदेह होने चाहिए। न्यायिक कार्यपद्धति में पारदर्शिता और न्यायिक कार्यों और निष्क्रियता के लिए जवाबदेही, संस्था में लोक निष्ठा और विश्वास को अनुप्राणित करती है।
- कठोर आंतरिक जवाबदेही और पारदर्शी तंत्र की कमी ने न्यायपालिका को नियमित सार्वजनिक समीक्षा से अपने आप को मुक्त रखने का अवसर दिया है। सूचना का अधिकार अधिनियम बंद और गुप्त न्यायिक प्रणाली के प्रकटीकरण की दिशा में एक कदम है।
- न्यायिक प्रणाली के सर्वाधिक सुशोभित पद पर होने के नाते भारत के मुख्य न्यायाधीश को RTI कानून का अनुपालन सुनिश्चित करना चाहिए और यह समझना चाहिए कि किसी भी संस्थान को तब तक विश्वसनीय नहीं माना जा सकता और वह सार्वजनिक विश्वास नहीं प्राप्त कर सकता, जब तक कि वह खुला और पारदर्शी न हो। न्यायपालिका उदाहरण प्रस्तुत करके और पारदर्शिता के मामले में नेतृत्व की भूमिका निभाकर, न कि गोपनीयता की आड़ में छिपकर, उस उच्च नैतिक आधार का भोग कर सकती है, जिसका वह प्राय: दावा करती है।

6.7 न्यायिक बैकलॉग और देरी

(Judicial Backlog and Delays)

लम्बे समय से लंबित मुकदमे और न्यायाधीशों की कमी भारतीय न्यायपालिका की ऐसी समस्याएँ हैं जो निरंतर चर्चा में बनी रहती हैं। *दक्ष (DAKSH)* द्वारा किये गए अपनी तरह के एक प्रथम अध्ययन में इनके सटीक परिमाण का आंकलन किया गया है। इन मुद्दों की पहचान, सार्वजनिक रूप से उपलब्ध आंकड़ों, वाद-सूचियों (कॉज लिस्ट), न्यायालयों की वेबसाइटों और ई-कोर्ट्स की वेबसाइटों का उपयोग कर की गयी।

न्यायालय में लंबित मामले

- इलाहाबाद उच्च न्यायालय में सबसे पुराने मामले लंबित हैं जबकि सिक्किम में लंबित मामले सबसे कम पुराने हैं।
- रिपोर्ट में पाया गया है कि मुंबई, गुजरात, केरल और उड़ीसा उच्च न्यायालयों के 86 प्रतिशत से अधिक मुकदमों को निपटाने में 10-15 वर्षों का समय लगा है।

न्यायालयों पर काम का बोझ

- उच्च न्यायालय के न्यायाधीश प्रति दिन **20 से लेकर 150 मामलों** या **औसतन 70 मामलों** की सुनवाई करते हैं।
- यदि प्रतिदिन के काम के समय और सुने गए मुकदमों के आधार पर औसत समय निकाला जाए तो एक न्यायाधीश को औसतन एक मुकदमा सुनने के लिए मात्र 2 मिनट ही मिल पाते हैं।
- किसी मामले में सुनवाई की आवृत्ति कलकत्ता उच्च न्यायालय में सर्वाधिक है वहीं दिल्ली में सबसे कम।
- सुनवाई की आवृत्ति का न्यायालयों की दक्षता के साथ गहरा सम्बन्ध है तथा इससे निष्पक्ष सुनवाई की अवधारणा प्रभावित होती है।

मुकदमों के लंबित होने के कारण

- न्यायपालिका के समक्ष दो प्रमुख समस्याएँ हैं- **अकुशल वाद प्रबंधन** के कारण मुकदमों के निपटारे में विलंब और **बेंचों में रिक्तियाँ**।
- **निम्न न्यायाधीश-जनसंख्या अनुपात:** भारत में प्रति दस लाख की आबादी पर केवल 17 न्यायाधीश हैं। अधीनस्थ न्यायालयों में लगभग 5000 पद रिक्त हैं। 1987 में विधि आयोग ने प्रति दस लाख की आबादी पर 50 न्यायाधीशों के अनुपात का विचार दिया था। इसके विपरीत, अमेरिका में प्रति दस लाख की आबादी पर 151 और चीन में 170 न्यायाधीश हैं।
- **न्यायाधीशों की नियुक्ति पर गतिरोध:** न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया तय करने का काम अभी भी अधर में ही लटका हुआ है जबकि विभिन्न उच्च न्यायालयों में रिक्त पदों की संख्या उनके लिए स्वीकृत पदों के लगभग 50% तक पहुँच गयी है।
- **अप्रभावी और समय लेने वाली प्रक्रियाएं:** मुकदमों की तारीखों को टालने में उदारता नहीं बरती जानी चाहिए। साथ ही, एक बार जो गवाह न्यायालय में प्रस्तुत किया जाए उसका परीक्षण अगली क्रमागत तारीखों पर किया जाना सुनिश्चित किया जाये।
- **वाद-प्रबंधन** केवल न्यायपालिका पर ही निर्भर नहीं होता बल्कि यह वकीलों की उपलब्धता पर भी निर्भर होता है।
- पुलिस के पास साक्ष्यों के वैज्ञानिक संग्रहण हेतु **प्रशिक्षण का अभाव** है। इसके अतिरिक्त, पुलिस और जेल अधिकारी प्रायः अपने कर्तव्यों को पूरा करने में विफल रहते हैं जिससे सुनवाई में अत्यधिक विलंब हो जाता है।

समय पर न्याय का महत्व

- सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकारों के एक भाग के रूप में संविधान का अनुच्छेद 21 कैदियों को निष्पक्ष और तीव्र सुनवाई का अधिकार भी देता है।
- यह अनुमान लगाया गया है कि यदि न्यायालय तीव्र निर्णय दें और विलंब का समय कम हो जाए तो आर्थिक विकास तेज होगा व सकल घरेलू उत्पाद में 1-2% की वृद्धि होगी।
- प्रक्रिया को गति देने से गरीबों और वंचित सामाजिक वर्गों को भी लाभ पहुँचेगा।

उठाए गए कदम

- सुप्रीम कोर्ट ने समयबद्ध सुनवाई और आपराधिक मामलों के निपटारे के लिए दिशा-निर्देश जारी किए हैं।
  - उच्च न्यायालय को एक माह और अधीनस्थ न्यायालयों को एक सप्ताह के भीतर जमानत याचिका पर निर्णय लेना चाहिए।
  - ऐसा मजिस्ट्रेट ट्रायल जहाँ आरोपी हिरासत में है, सामान्यतः छः माह के भीतर पूरा कर लिया जाना चाहिए। वह सेशन ट्रायल जहाँ आरोपी हिरासत में है, दो वर्षों के भीतर पूरा कर लिया जाना चाहिए।

VISION IAS

- ○ उच्च न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अधीनस्थ न्यायालय पांच वर्षों से लंबित मामलों को 2017 के अंत तक निपटा लें।
- ○ उच्च न्यायालय के समक्ष पड़े उन मामलो को जल्द से जल्द निपटाना चाहिए जिनमें आरोपी पांच वर्ष से अधिक समय से हिरासत में है ।
- ○ हाल ही में, सुप्रीम कोर्ट के कम से कम 15 न्यायाधीशों ने यह निर्णय लिया है कि वे संवैधानिक महत्व के तीन मामलों को निपटाने के लिए आगामी ग्रीष्मकालीन छुट्टियों में भी सुनवाई करेंगे।

आगे की राह

- समस्या वाले क्षेत्रों की पहचान करना तथा उनका समाधान निकालना। उदाहरण के लिए झारखंड उच्च न्यायालय में सिविल मुकदमों की तुलना में आपराधिक मुकदमों की संख्या का अधिक होना। लंबित मामलों को विशेष बेंचों का गठन करके निपटाया जा सकता है।
- उच्च न्यायपालिका में नियुक्तियों का मुद्दा शीघ्र ही हल किया जाना चाहिए। न्यायपालिका और कार्यपालिका का एकमत होना आवश्यक है जिससे एक प्रभावी नियुक्ति प्रक्रिया तैयार हो सके।
- पारदर्शिता और सूचना के प्रवाह में सुधार के लिए **सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ICT) के साधनों तथा आधुनिक वाद-प्रबंधन प्रणाली** का उपयोग किया जाना चाहिए।
- **वैकल्पिक विवाद समाधान** प्रणाली को मजबूत किया जाना चाहिए और लोगों को इसके बारे में अवगत कराया जाना चाहिए।
- **अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कुछ सर्वोत्तम प्रथाओं (बेस्ट प्रैक्टिसेस)** जैसे कि वादों का न्यायिक प्रबंधन, मुकदमे की तैयारी, सेटलमेंट कांफ्रेंस, कुछ निश्चित चीज़ें फाइल करने हेतु वकीलों के लिए समय-सीमा तय करना, प्रारंभिक पूछताछ की प्रक्रिया की समाप्ति इत्यादि का विकास किया गया है। यह विलंब कम करने में बहुत प्रभावी साबित हुए हैं तथा इनके परिणामस्वरूप बैकलॉग भी कम हुआ है।
- **पुलिस सुधार:** प्रभावी कार्यवाही और जांच प्रणाली में सुधार के लिए पुलिस प्रशासन को अधिक संसाधन (वित्तीय और मानवीय दोनों प्रकार के) प्रदान करने की आवश्यकता है।
- **भौतिक आधारभूत संरचना** का विस्तार किया जाना चाहिए और प्रणाली को अबाध रूप से संचालित करने के लिए आवश्यक सहयोगी कर्मचारी उपलब्ध कराए जाने चाहिए।
- **ग्राम न्यायालयों** की स्थापना का कार्य तीव्रता से संपन्न किया जाना आवश्यक है ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि 'सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य असमर्थताओं के कारण कोई भी नागरिक न्याय के अवसरों से वंचित नहीं हुआ है'।

6.8. अनुच्छेद-142 और न्यायिक संयम की आवश्यकता

(Article 142 and the Need for Judicial Restraint)

सुर्ख़ियों में क्यों?

राजमार्गों पर शराब प्रतिबंधित करने एवं बाबरी मस्जिद गिराने से संबंधित दो मामलों पर संयुक्त ट्रायल का आदेश देने जैसे कई मामलों में सुप्रीम कोर्ट के द्वारा अनुच्छेद-142 के लगातार उपयोग की आलोचना की जा रही है।

अनुच्छेद 142 के अनुसार उच्चतम न्यायालय अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए ऐसी डिक्री पारित कर सकेगा या ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जो उसके समक्ष लंबित किसी वाद या विषय में **पूर्ण न्याय** करने के लिए आवश्यक हो।

चिंता का कारण

- **असीमित शक्ति** - अनुच्छेद-142 असीमित शक्ति का स्रोत नहीं है और इसका उपयोग संयम के साथ करना चाहिए। इसका इस प्रकार प्रयोग किया जाना चाहिए कि यह **न्यायिक अतिसक्रियता** प्रतीत ना हो।
- **नागरिकों के अधिकारों को प्रभावित करता है-** इन दो निर्णयों ने एक ओर जहाँ आरोपी के अधिकारों को प्रभावित किया है, वहीं दूसरी ओर इसके कारण लाखों लोगों के समक्ष बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न हो गई है।
- **असंवैधानिक-** यह **'शक्ति के पृथक्करण'** के सिद्धांत के विरुद्ध है। उल्लेखनीय है कि शक्ति का पृथक्करण संविधान के बुनियादी ढाँचे का हिस्सा है।
- चूंकि सुप्रीम कोर्ट के 31 न्यायाधीश, निर्णय करने के लिए दो या तीन न्यायाधीशों को मिलाकर बनने वाली बेंच के रूप में तेरह डिवीजनों में बैठते हैं और प्रत्येक बेंच एक-दूसरे से स्वतंत्र होती है। अतः **विवेकाधिकारों के बारे में अनिश्चितता उत्पन्न होती है।**

VISION IAS

आगे की राह

हालांकि पूर्व में सुप्रीम कोर्ट ने अनुच्छेद-142 का प्रयोग उचित रूप से किया है, जैसे- यूनियन कार्बाइड केस, ताजमहल की सफाई, जेलों से विचाराधीन (अंडरट्रायल) कैदियों की रिहाई इत्यादि। फिर भी अनुच्छेद-142 के प्रयोग के दौरान समाज के विभिन्न वंचित वर्गों को सम्पूर्ण न्याय प्रदान करने के लिए कुछ नियमों के अनुसरण पर विचार किया जाना चाहिए:

- अनुच्छेद 142 से संबंधित मामलों को कम से कम पाँच न्यायाधीशों से मिलकर बनने वाली संविधान पीठ को भेजा जाना चाहिए ताकि अनुच्छेद-142 से संबंधित अनिश्चितताओं को कम किया जा सके।
- जिन मामलों में अदालत के द्वारा अनुच्छेद-142 का प्रयोग किया जाता है उनके संबंध में सरकार को इसके लाभकारी एवं नकारात्मक प्रभावों का अध्ययन करने के लिए एक **श्वेतपत्र** लाना चाहिए। निर्णय की तिथि से छह महीने के बाद या इससे संबंधित तारीख से इस प्रक्रिया को आरम्भ किया जा सकता है।
- सुप्रीम कोर्ट को अपने बार-बार दोहराए गए उस सिद्धांत का पालन करना चाहिए जिसके अनुसार अन्य कोई वैधानिक उपाय उपलब्ध होने पर संविधान के अनुच्छेद-142 का प्रयोग अनुचित है।

6.9. वैकल्पिक विवाद समाधान प्रणाली

(Alternative Dispute Redressal Mechanism)

6.9.1 पंचाट और मध्यस्थता

(Arbitration and Mediation)

सुर्ख़ियों में क्यों?

भारतीय न्यायपालिका में लंबित मामलों की संख्या में भारी वृद्धि को देखते हुए विवादों को हल करने की एक वैकल्पिक विधि की आवश्यकता है। **वैकल्पिक विवाद निवारण** (Alternate Dispute Redressal: ADR) इसका एक उदाहरण है।

ADR क्या है?

- जैसा कि नाम से पता चलता है, **ADR** असहमत पक्षों को मुकदमेबाजी की प्रक्रिया में पड़े बिना किसी विवाद के समाधान हेतु स्थापित तंत्र है।
- **ADR** प्रक्रिया केवल दीवानी विवादों के मामले में स्वीकार्य है, जिसे कानून द्वारा स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जाता है। **ADR** के तरीकों को न्यायालय और औपचारिक कानून प्रणाली का विकल्प घोषित किया गया है तथा इसे विवाद को शीघ्रता से और सौहाद्रपूर्ण तरीके से सुलझाने के लिए अपनाए जाने वाले सर्वोत्तम तरीकों में से एक माना गया है।
- **ADR** प्रणाली के तीन साधन हैं:
- **पंचाट (Arbitration):** यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक तटस्थ तृतीय पक्षकार या पक्षकारों का समूह मामले के गुण-अवगुणों के आधार पर निर्णय प्रस्तुत करता है।
  - विवाचन की प्रक्रिया केवल तब ही आरंभ की जा सकती है जब विवाद के उद्भव के पहले ही दोनों पक्षों के बीच एक वैध पंचाट समझौता किया गया हो।
- **मध्यस्थता (Mediation):** मध्यस्थता की प्रक्रिया का लक्ष्य विवादित पक्षों को आपसी सहमति के माध्यम से समाधान तक पहुँचने में सहायता करना है।
  - मध्यस्थता की प्रक्रिया का निरीक्षण एक निष्पक्ष तृतीय पक्ष अर्थात एक मध्यस्थ द्वारा किया जाता है। मध्यस्थ का प्राधिकार दोनों पक्षों की आपसी सहमति में निहित होता है।
- **सुलह (Conciliation):** यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा विवादों का समाधान समझौते या स्वैच्छिक करार द्वारा प्राप्त किया जाता है।
  - पंचाट के विपरीत, सुलह की प्रक्रिया में बाध्यकारी निर्णय नहीं दिए जाते हैं। दोनों पक्ष इस प्रक्रिया से प्राप्त निर्णय को स्वीकार करने या अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र होते हैं।

ADR के प्रावधानों की पृष्ठभूमि

- भारत में पंचायत सबसे पहला ज्ञात वैकल्पिक विवाद निवारण तंत्र है। निर्णय लेने के लिए एक निष्पक्ष तृतीय पक्ष की मदद लेना लंबे समय से भारतीय संस्कृति का हिस्सा रहा है। हालांकि आधुनिक न्यायिक प्रणाली के आरंभ होने से यह परंपरा लुप्त हो गयी है।

VISION IAS

- **ADR** तंत्र को पहली बार, **बंगाल विनियमन अधिनियम 1772 और बंगाल विनियमन अधिनियम 1781** के माध्यम से **ईस्ट इंडिया कंपनी** द्वारा तैयार किया गया था। इसके अनुसार दोनों पक्षों को अपना विवाद विवाचक या मध्यस्थ व्यक्ति को प्रस्तुत करना होता था। इसे पारस्परिक समझौतों के बाद नियुक्त किया जाता था तथा इसका निर्णय दोनों पक्षों के लिए बाध्यकारी होता था।
- भारतीय संविधान में, इस व्यवस्था का मूलाधार **अनुच्छेद 14** (कानून के समक्ष समानता) और **अनुच्छेद 21** (जीविकोपार्जन और व्यक्तित्व स्वतंत्रता का अधिकार) में मिलता है।
- संवैधानिक उपचारों का अधिकार, **अनुच्छेद 32** लोगों को न्याय दिलाने का अधिकार प्रदान करता है।
- अनुच्छेद 39A के अंतर्गत **समान न्याय और निःशुल्क कानूनी सहायता** के लिए **ADR** को DPSP से भी निःसंदेह सम्बद्ध किया जा सकता है।
- न्यायालय के बाहर विवादों का निपटान सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों का एक भाग है (धारा 89)।
- जस्टिस **मालिमथ समिति (1989-90)** ने भारत में न्यायिक व्यवस्था के कार्यों की व्यापक समीक्षा की और ADR तंत्र को व्यवहार्य विकल्प के रूप में स्थापित करने का सुझाव दिया।
- **भारत में ADR प्रणाली लागू करने के लिए अधिनियमित अन्य क़ानून –**
- मध्यस्थता और सुलह अधिनियम (Arbitration and Conciliation Act), 1996 (इस अधिनियम का पहला भाग मध्यस्थता की प्रक्रिया का औपचारिक रूप है और तीसरा भाग सुलह की प्रक्रिया का औपचारिक रूप है)
- ग्राम न्यायालय अधिनियम 2009
- कानूनी सेवा अधिकरण अधिनियम (1987) (**लोक अदालत** प्रणाली की स्थापना)

ADR की आवश्यकता

- भारतीय न्यायपालिका के पास वर्तमान में लगभग 3 करोड़ मामले लंबित हैं, जिनमें हर दिन वृद्धि हो रही है। न्यायपालिका पर इस भारी बोझ के कारण, न्यायपालिका के बाहर विवादों के निपटान के लिए एक प्रणाली की स्थापना की तत्काल आवश्यकता अनुभव की गयी है।
- समयबद्ध न्याय प्राप्ति का अधिकार जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार में निहित है। जटिल न्यायिक प्रणाली के परिणामस्वरूप न्याय में विलंब होता है जिससे नागरिकों के मौलिक अधिकार का उल्लंघन होता है। इस प्रकार, समय पर न्याय प्राप्ति को सुनिश्चित करने के लिए, न्यायपालिका को दबावरहित बनाने की आवश्यकता है। साथ ही ADR प्रणाली को औपचारिक कानूनी प्रक्रिया का विकल्प बनाया जाना वर्तमान समय की आवश्यकता है।
- भारत में न्यायिक कार्यवाही न केवल अत्यधिक समय लेती है बल्कि वह महंगी तथा गरीबों के लिए दुष्प्राप्य है। पंचाट, मध्यस्थता और सुलह, नागरिकों को न्याय प्रदान करने के सस्ते तरीके हैं। ADR की तकनीक हमारी पारंपरिक न्यायिक प्रणाली हेतु **व्यावहारिक और निष्पक्ष विकल्प** तैयार करने का प्रयास है।
- नागरिकों के बीच सुलह और मध्यस्थता की संस्कृति को स्वीकार्य बनाने में यह तंत्र एक महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाता है। यह दोनों पक्षों के बीच सहयोग को बढ़ावा देता है।
- यह हमारी औपचारिक न्यायिक प्रणाली जितनी जटिल नहीं है इसलिए यह सामान्य लोगों की जरूरतों के अनुरूप सरल कानूनी प्रक्रिया है। इसके तहत सम्बंधित पक्ष स्वतंत्र रूप से मामलों पर चर्चा कर सकते हैं।
- ADR प्रणाली के उपयोग से प्राप्त परिणाम उन मामलों में गोपनीय रखे जा सकते हैं जहां दोनों पक्ष मुद्दे को सार्वजनिक बनाना नहीं चाहते हैं।

ADR प्रणाली की सेवाएँ प्रदान करने वाली संस्थाएँ:

- IIAM-इन्डियन इंस्टिट्यूट ऑफ़ आर्बिट्रेशन एंड मीडिएशन
- ICA- इन्डियन कौंसिल फॉर आर्बिट्रेशन
- ICADR-इंटरनेशनल सेंटर फॉर अल्टरनेट डिस्प्यूट रेड्रेस्सल

इनके द्वारा भी मौज़ूदा ADR कानूनों में सुधार की आवश्यकता महसूस की गयी है तथा इस हेतु इन्होने अपनी अनुशंसाएँ प्रदान की हैं।

सीमाएं

- पारंपरिक न्यायपालिका के मामलों के विपरीत इसमें समाधान की कोई गारंटी नहीं है। पंचाट का निर्णय अंतिम हैं तथा किसी भी न्यायालय द्वारा निरस्त नहीं किए जा सकते हैं। ऐसी स्थिति में मध्यस्थ के पक्षपातपूर्ण होने की स्थिति में एक पक्ष द्वारा ठगा हुआ महसूस किया जा सकता है।
- प्रक्रिया का अप्रचलित होना तथा जागरूकता का अभाव।
- अनौपचारिक और शक्ति के दुरूपयोग की अधिक संभावना।

6.9.2. राष्ट्रीय लोक अदालत

(National Lok Adalat)

सुर्ख़ियों में क्यों?

- राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (नेशनल लीगल सर्विसेज अथॉरिटी: NALSA) के अनुसार हाल ही में देश भर में तालुका स्तर से लेकर उच्च न्यायालय स्तर तक सभी स्तरों पर राष्ट्रीय लोक अदालत में 6.6 लाख वादों का समाधान किया गया।
- लोक अदालतों ने मुकदमे से पूर्व मामलों और लंबित वादों दोनों का समाधान किया गया।

- विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम के तहत **NALSA** का गठन किया गया है।
- **NALSA** का प्रमुख उद्देश्य समाज के कमजोर वर्गों को नि:शुल्क और उचित विधिक सेवाएं प्रदान करना है।

लोक अदालत के बारे में

- लोक अदालत का अर्थ लोगों की अदालत है। यह एक **वैकल्पिक विवाद समाधान प्रणाली** है।
- जहाँ सामान्य न्यायालयों किसी भी मामले पर निर्णय दिया जाता है, वहीं इसके विपरीत लोक अदालतें विभिन्न पक्षों के मध्य पारस्परिक समझौते के माध्यम से विवादों का समाधान करती हैं।
- भारत में विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के माध्यम से लोक अदालत प्रणाली का विकास किया गया था। यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 39-A में संवैधानिक अधिदेश के अनुसार है।
- राज्य प्राधिकरण, जिला प्राधिकरण, सुप्रीम कोर्ट लीगल सर्विसेज कमिटी, हाई कोर्ट लीगल सर्विसेज कमिटी, या तालुका लीगल सर्विसेज कमिटी द्वारा लोक अदालतों का आयोजन किया जा सकता है।
- लोक अदालतें सभी दीवानी वादों, वैवाहिक विवाद, भूमि विवाद, विभाजन / संपत्ति विवाद, श्रम विवाद तथा समाधान करने योग्य आपराधिक वादों आदि का निपटान कर सकती हैं।

महत्व

- लोक अदालतें लंबित प्रकरणों का भार कम करने में न्यायपालिका की सहायता कर सकती हैं।
- लोक अदालतें परीक्षण के बिना त्वरित समाधान प्रदान कर सकती हैं।

6.10. न्यायपालिका से सम्बंधित योजनाएँ

(Schemes Related to Judiciary)

6.10.1. इंटीग्रेटेड केस मैनेजमेंट इनफार्मेशन सिस्टम (ICMIS)

(Integrated Case Management Information System:ICMIS)

सुर्ख़ियों में क्यों ?

- मामलों की डिजिटल फाइलिंग के लिए सर्वोच्च न्यायालय के '**इंटीग्रेटेड केस मैनेजमेंट इनफार्मेशन सिस्टम**' (ICMIS) का अनावरण किया गया।

ICMIS के कार्य:

- इस सिस्टम के माध्यम से केस की ई-फाइलिंग का विकल्प, केस लिस्टिंग की तिथि, केस की स्थिति, सूचना/सम्मन की ऑनलाइन सुविधा, कार्यालय रिपोर्ट तथा सर्वोच्च न्यायालय के पंजीकरण कार्यालय में दाखिल मामलों (cases) के सम्बन्ध में समग्र रूप से हुई प्रगति की ऑनलाइन जानकारी प्राप्त होगी।
- यह न्यायालय से संबंधित शुल्कों और प्रक्रिया शुल्क के भुगतान के लिए एक ऑनलाइन गेटवे तथा एक *ऑनलाइन कोर्ट फी कैलकुलेटर* के रूप में कार्य करेगा।

ICMIS के लाभ:

- अधिवक्ताओं और पंजीकरण कार्यालय दोनों के लिए फाइलिंग प्रोसेस को सुव्यवस्थित करेगा।
- यह पारदर्शिता को सुनिश्चित करेगा, केस से जुड़ीं जानकारी तक आसान पहुंच प्रदान करेगा और कम समय में याचिका दाखिल करने में मदद करेगा। इन सभी लाभों के द्वारा न्यायिक प्रक्रिया तीव्र हो सकेगी।

6.10.2. टेली-लॉ इनिशिएटिव

(Tele-Law Initiative)

सुर्ख़ियों में क्यों?

ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले पिछड़े समुदायों और नागरिकों के लिए कानूनी सहायता आसानी से सुलभ कराने हेतु, भारत सरकार ने 11 जून, 2017 को *'टेली-लॉ'* पायलट प्रोजेक्ट का शुभारम्भ किया।

विवरण

इस पहल हेतु **विधि और न्याय मंत्रालय** ने **इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय** के साथ भागीदारी की है। इसका उद्देश्य *कॉमन सर्विस सेंटर (CSC)* के माध्यम से समस्त भारत में पंचायत स्तर पर कानूनी सहायता उपलब्ध कराना है।

- परियोजना के पहले चरण में, उत्तर प्रदेश और बिहार में 500 CSC के माध्यम से 'टेली-लॉ' योजना का परीक्षण किया जाएगा ताकि इसकी चुनौतियों को समझा जा सके और समस्त भारत में लागू करने से पहले आवश्यक सुधार किए जा सकें।
- इसके लिए 'टेली-लॉ' नामक एक पोर्टल लॉन्च किया जाएगा, जो CSC नेटवर्क के माध्यम से कार्य करेगा। यह लोगों को वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के जरिए अधिवक्ताओं से कानूनी सलाह प्राप्त करने में सक्षम बनाएगा।
- विधिक सहायता पर काम कर रहे लॉ स्कूल क्लीनिक, जिला विधिक सेवा प्राधिकरणों, स्वैच्छिक सेवा प्रदाताओं और गैर-सरकारी संगठनों को CSC के माध्यम से भी जोड़ा जा सकता है। इससे हाशिए पर स्थित लोगों तक न्याय की पहुंच मजबूत हो सकेगी। राष्ट्रीय कानूनी सेवा प्राधिकरण (NALSA) भी इस कार्य हेतु राज्य की राजधानियों से वकीलों का एक पैनल उपलब्ध कराएगा।
- एक पूर्ण रूप से क्रियाशील निगरानी और मूल्यांकन प्रणाली भी तैयार की जा रही है जो कानूनी सलाह की गुणवत्ता का आकलन करने में सहायता करेगी।
- प्रत्येक CSC के अंतर्गत एक *पैरा लीगल वालंटियर (PLV)* होगा, जो ग्रामीणों के लिए प्रथम संपर्क बिंदु होगा।

पैरा लीगल वालंटियर

- वे ग्रामीणों के लिए संपर्क का पहला बिंदु होंगे, कानूनी मुद्दों को समझने में उनकी मदद करेंगे, वकील द्वारा दी गई सलाह को समझाएंगे और आवश्यक कार्रवाई में सहायता करेंगे।
- योजना के तहत महिला PLV को प्रोत्साहित और प्रशिक्षित किया जाएगा। इसका उद्देश्य महिला उद्यमिता और सशक्तिकरण को बढ़ावा देना है और महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करना है।

सरकार की अन्य अभिनव पहलें

'टेली-लॉ, विधि एवं न्याय मंत्रालय द्वारा घोषित तीन कानूनी सहायता और सशक्तीकरण की पहलों में से एक है। इसके अतिरिक्त अप्रैल, 2017 में न्याय विभाग द्वारा ***'प्रो-बोनो लीगल सर्विस'*** और **'न्याय मित्र स्कीम'** की घोषणा की गई है।

प्रो-बोनो लीगल सर्विस: यह एक वेब आधारित पहल है। इसके बारे में जानकारी, इसकी वेबसाइट *www.doj.gov.in* से प्राप्त की जा सकती है।

- जो याचिकाकर्ता कानूनी सेवाओं का खर्च नहीं उठा सकते हैं, वे *प्रो-बोनो वकीलों* से कानूनी सहायता और सलाह के लिए आवेदन कर सकते हैं।
- इस ऑनलाइन पहल का मुख्य उद्देश्य संस्थागत तरीके से कानूनी सहायता की अवधारणा को बढ़ावा देना है और यह सुनिश्चित करना है कि ऐसी सेवाओं के लिए स्वयंसेवा करने वाले वकीलों को मान्यता प्राप्त हो।

'न्याय मित्र' स्कीम: इस योजना का उद्देश्य चयनित जिलों में लंबित मामलों की समयावधि को कम करना है। इसके अंतर्गत 10 साल से अधिक समय से लंबित मामलों पर विशेष ध्यान दिया जायेगा।

VISION IAS

- यह योजना उन वादियों (litigants) की सहायता करेगा जो ट्रायल में देरी के कारण पीड़ित हैं। इन मुकदमों की सक्रिय रूप से पहचान करने के लिए *राष्ट्रीय न्यायिक डेटा ग्रिड* की सहायता ली जाएगी। साथ ही वादी को सरकारी एजेंसियों और सिविल सोसायटी संगठनों से जोड़ कर, विधिक सलाह प्रदान कर उनकी सहायता की जाएगी।
- यह पहल 227 जिलों में प्रारम्भ की जाएगी। इसमें 27 जिले **उत्तर-पूर्व और जम्मू-कश्मीर** के एवं 200 जिले **उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, राजस्थान, ओडिशा, गुजरात तथा पश्चिम बंगाल** के शामिल हैं।

एक्सेस टू जस्टिस प्रोजेक्ट फॉर मार्जिनलाईज्ड पर्सन्स (Access to Justice Project for Marginalized Persons):

ये योजनाएँ न्याय विभाग और UNDP द्वारा लागू किये जा रहे **एक्सेस टू जस्टिस प्रोजेक्ट फॉर मार्जिनलाईज्ड पर्सन** के क्रम में हैं। झारखंड और राजस्थान में CSC के माध्यम से कानूनी साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए *एक्सेस टू जस्टिस प्रोजेक्ट* ने *CSC-ई-गवर्नेंस सर्विसेज इंडिया लिमिटेड* के साथ सांझेदारी की है।

महत्व: न्याय तक सभी लोगों की पहुँच सुनिश्चित करने हेतु प्रौद्योगिकी का उपयोग डिजिटल इंडिया पहल को सशक्त करता है। इसके साथ ही यह पहल पारदर्शिता, सुशासन और सेवाओं के डिजिटल वितरण को प्राथमिकता देती है।

यह गरीब, ग्रामीण, हाशिए पर खड़े समुदायों को एक आवाज देने और सभी के पास न्याय की समान पहुंच सुनिश्चित करने के लिए एक उपकरण के रूप में काम करेगा।

6.10.3. 'मध्यम आय समूह योजना' (मिडिल इनकम ग्रुप स्कीम)

(Middle Income Group Scheme)

- सर्वोच्च न्यायालय ने वहनीय (सस्ती) विधिक सेवाएं प्रदान करने के लिए 'मध्यम आय समूह योजना' प्रारम्भ की है। इसके तहत योजना से सम्बद्ध अनुसूची के अनुसार ही शुल्क लिया जाएगा।
- यह योजना 'सर्वोच्च न्यायालय मध्यम आय समूह विधिक सहायता सोसायटी' नामक सोसाइटी द्वारा प्रशासित होगी, जिसका पंजीकरण इसी उद्देश्य से किया गया है। इस सोसायटी के मुख्य संरक्षक भारत के मुख्य न्यायधीश तथा पदेन उपाध्यक्ष महान्यायवादी होंगे।
- इससे लाभ प्राप्त करने वाले सर्वोच्च न्यायालय में वे वादी होंगे, जिनकी कुल आय 60,000 रूपये प्रतिमाह या वार्षिक आय 7.5 लाख रूपये से कम है।

प्रासंगिक संविधानिक प्रावधान:

- नि:शुल्क विधिक सहायता या नि:शुल्क विधिक सेवा का अधिकार, एक महत्वपूर्ण मौलिक अधिकार है, जिसे संविधान द्वारा गारंटी प्रदान की गयी है तथा भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत तर्कसंगत, निष्पक्ष और न्यायोचित स्वतंत्रता के आधार का निर्माण करता है।
- अनुच्छेद 39-A में कहा गया है कि "राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए।

6.11. अलग-अलग अपराधों के लिए पृथक-पृथक ट्रायल

(Separate Trial for Distinct Offences)

सुर्ख़ियों में क्यों?

सुप्रीम कोर्ट ने हाल ही में एक निर्णय दिया कि करोड़ों रूपए के चारा घोटाले जैसे सभी मामलों पर अलग-अलग ट्रायल किया जाना चाहिए। न्यायालय के अनुसार "संयुक्त ट्रायल एक अपवाद है तथा मानक व्यवस्था के अनुसार अलग-अलग अपराधों के लिए पृथक ट्रायल होना चाहिए।"

समस्या की पृष्ठभूमि

- चारा घोटाले में 1990 से 1997 के बीच विभिन्न जिलों में पशुपालन विभाग द्वारा 1,000 करोड़ रुपये की राशि की अवैध निकासी की गई।
- अलग-अलग समय में राजकोष से निकासी की गयी रकम के लिए आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ कई मामले दायर किये गए थे।

संविधान के अनुच्छेद 20(2) के अनुसार "किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित और दंडित नहीं किया जायेगा"।

VISION IAS

सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए तर्क

- यद्यपि "यह एक ही षड्यंत्र था" परन्तु इसमें "अलग-अलग समय में भिन-भिन्न अपराधी शामिल रहे",अर्थात विभिन्न वित्तीय वर्षों में विभिन्न कोषों से धन की निकासी की गयी।
- संविधान में एक ही अपराध के लिए दो बार सजा देने का प्रावधान नहीं है, लेकिन इस तरह के अपराध के लिए दोषी करार दिए जाने का अर्थ यह नहीं है कि समान तरीकों (modus oparandi) से अंजाम दिए गए किसी अन्य मामले में ट्रायल नहीं किया जाएगा।
- एक ही षड्यंत्र के अलग-अलग अपराधों के लिए एक ही ट्रायल अपराधियों को बच निकलने में सहायता करेगा और ऐसे ही अन्य अपराध करने के लिए प्रेरित करेगा।

अन्य संबंधित मुद्दे

- झारखंड उच्च न्यायालय ने इस तरह के एक मामले में दूसरे आरोपी के संबंध में "विरोधाभासी" निर्णय दिया था। इस प्रकार, निर्णय प्रक्रिया में असंगति न्यायिक संस्थाओं के प्रति लोगों के विश्वास और विश्वसनीयता को प्रभावित करेगी।
- आरोप मुक्त किये जाने के निर्णय के विरुद्ध CBI के द्वारा अपील दर्ज़ करने में की गयी देरी ने इस एजेंसी की प्रतिष्ठा को भी चोट पहुँचाई है।

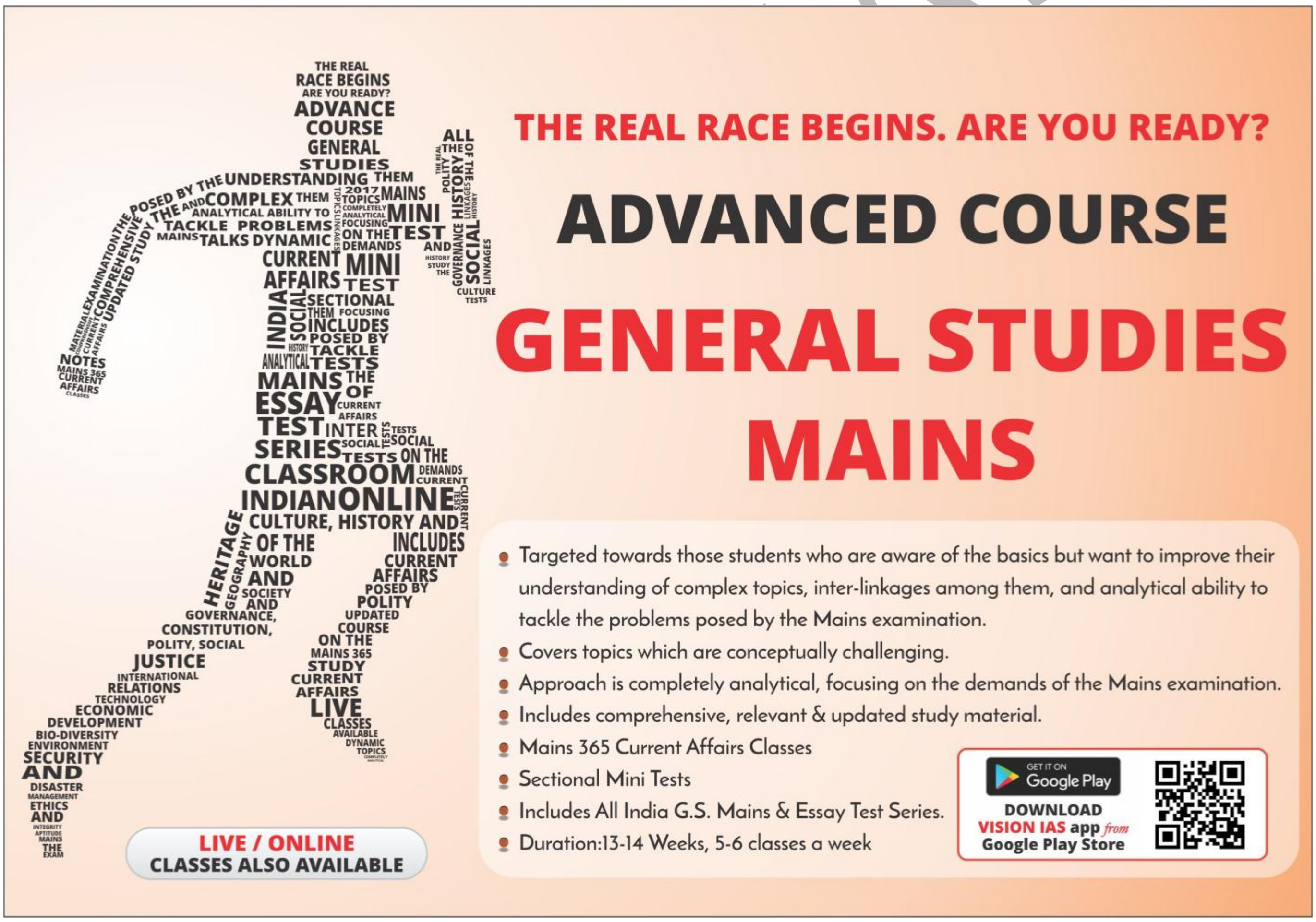

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.